भूमिका

—:o:—

पिछले छः वर्षों की बात है कि एक चीनी श्रमण जिनका नाम बाङ-हुई था, काशी मे संस्कृत पढ़ने आए थे। श्रद्धेय श्रीचंद्र-मणि भिक्षु ने मेरे पास उन्हे संस्कृत पढने के लिये भेजा। वे मेरे पास साल भर से अधिक रहे। उन्हे संस्कृत पढ़ाते हुए मैंने चीनी भाषा का अभ्यास करना प्रारंभ किया। पहले तो कुछ उच्चारण करके अभ्यास किया पर जब मैंने देखा कि चीनी भाषा मे वर्णक्रम नहीं है, जिससे शब्दो का ठीक उच्चारण हो सके, किंतु प्रत्येक सत्व और भाव के लिये पृथक् पृथक् संकेत नियत हैं तो मैंने उच्चारण को छोड दिया और संकेतो का ही अभ्यास करना प्रारंभ किया। इस प्रकार थोड़े समय मे जितना हो सका मैंने संकेतो का अभ्यास किया।

चीनी भाषा यद्यपि हमारे पूर्वजों को सुगम रही हो क्योंकि हम देखते हैं कि भारतवर्ष के अनेक बौद्धाचार्यों ने जैसे आचार्य कश्यपमातंग, धर्म-रक्षक, कुमारजीव, बुद्धभद्र इत्यादि ने भारत-वर्ष से चीन देश में जाकर वहां की भाषा ही का ज्ञान नहीं प्राप्त किया था, किंतु अनेक धर्मग्रंथों का अनुवाद वहां की भाषा में किया था जिनका मान अब तक वहां के भिक्षुसंघ मे है, तो भी वह हमारे लिये एक अद्भुत भाषा है। वहां के शब्द प्रायः सब

के सब एकाच हैं, पर लिपि से उनके उच्चारण का कुछ भी न तो संबध ही है और न लिपि से उनके उच्चारण का ज्ञान ही हो सकता है। उनकी लिपि चैत्रिक है। प्रत्येक भाव और सत्व के लिये पृथक् पृथक् सकेत हैं। ये संकेत चित्रलिपि के विकारभूत हैं। एक ही भाव के लिये चाहे शब्द मे भेद भले ही पड़े पर संकेत मे भेद नहीं है।

इन कठिनाइयों पर भी मुझ से जहां तक हो सका मैंने अभ्यास किया और इच्छा थी कि यदि चीनी भाषा का कोई कोश मिल जाता तो और भी अभ्यास बढ़ा लेता। पर दुर्भाग्य-वश कोई ऐसा कोश नहीं मिल सका।

जिस समय बाङ-हुई मेरे पास थे उस समय मैंने यह निश्चय किया था कि चीनी यात्रियों के यात्रा-विवरणों का हिंदी भाषा मे अनुवाद करू और यदि कोई प्रकाशक मिले तो उनका अनुवाद अंग्रेजी मे भी करू। पर उस समय कोई प्रकाशक न मिला और मेरा यह निश्चय मेरे मन ही मे रह गया। श्रमण बाङ-हुई भी मेरे पास से चले गए।

नागरी-प्रचारिणी सभा ने श्रीयुक्त मुशी देवीप्रसाद जी मुसिफ जोधपुर की सहायदा से ऐतिहासिक ग्रथमाला निकालने का विचार किया और फाहियान का हिदी अनुवाद प्रकाशित करने का निश्चय किया। इसके अनुवाद करने का भार मुझे दिया गया। दैवयोग से जो प्रति मुझे मिली उसमे लेगी का अनुवाद और अंत मे मूल भी था। मूल को देख मेरा पूर्व संकल्प फिर जाग्रत

हो आया और मैंने मूल को विचारना प्रारभ किया। यद्यपि मैं अंग्रेजी से अनुवाद करता तो थोड़े काल मे करके बोझा टाल देता पर मैंने मूल से ही अनुवाद करना उचित समझा। ऐसा करने मे यद्यपि मुझे श्रम अधिक पड़ा तथापि इसमे और अंग्रेजी के अनुवाद मे जो भेद है उसे वे ही पाठक अनुमान कर सकेंगे जिन्होने अंग्रेजी के अनुवादकों वा तदाश्रित भाषानुवादों को देखा होगा।

इस अनुवाद मे मैंने लेगी और बील के अंग्रेजी अनुवादों से तथा प्रो० समद्दार के बँगला अनुवाद से सहायता ली है जिसके लिये मैं उनका अनुगृहीत हूं।

इस अनुवाद मे अंग्रेजी अनुवाद से बहुत अंतर देख पड़ेगा, क्योकि मैंने अनुवाद को चीनी भाषा के मूल के अनुसार ही जहां तक हो सका है करने की चेष्टा की है। अनेक स्थलों पर विरोध का हेतु भी टिप्पणी मे दे दिया है। इसमे संदेह नहीं कि यदि मैं यह अनुवाद उस समय करता जब श्रमण बाङ-हुई जी यहां उपस्थित थे तो इसमे मुझे बड़ी सुगमता होती और अनुवाद भी अच्छा होता। पर फिर भी मैंने अनुवाद को यथातथ्य करने मे कुछ कमी नही की है। अनुवाद के प्रारंभ मे एक उपक्रम है जिससे पाठकों को इसका अनुमान हो जायगा कि फाहियान किस मार्ग से भारतवर्ष आया, उसमे युरोपीय विद्वानों का क्या मत है और मेरे मत से क्या ठहरता है। साथ ही फाहियान की यात्रा का मार्ग भी एक चित्र द्वारा दिखा दिया गया है। अंत मे

अनुवाद मे आए हुए उपयोगी शब्दो की अकारादि क्रम से एक सूची भी लगा दी है जिसमें बौद्ध-धर्म-संबधी व्यक्तियो तथा अन्य शब्दो की पर्य्याप्त व्याख्या वा विवरण दे दिया गया है।

इतने पर भी यदि कुछ त्रुटि रह गई हो तो पाठको से प्रार्थना है कि वे उसकी सूचना मुझे देने की कृपा करें जिसमे उसका सुधार दूसरे संस्करण मे कर दू।

शांतिकुटी
फाल्गुन शुक्ल पूर्णिमा
संवत १९७९

जगन्मोहन वर्म्मा।

विषय-सूची

६०
७०
८०
९०
१००
११०
१२०
४०
३०
२०
१०
०
१०
८०
९०
१००
११०
जीहो
खुतन
शेनशेन
तक्षशिला
पेशावर
तिब्बत
मथुरा
पटना
काशी
गया
तमलुक
भारतवर्ष
बर्म्मा
सियाम
जावा
फाहियान का मार्ग
युरोपियनों का जहां

उपक्रम।

ईसा के जन्म से कई शताब्दी पहले ही से चीन देश मे भारत के धर्म नीति सभ्यता आदि की ख्याति फैल गई थी। यह ख्याति संभवतः पारसी वा यूनानी किसके द्वारा पहुँची इसका ठीक पता अब तक नहीं चला है। सू-मा-चेइन नामक लेखक ने सब से पहले ईसा के जन्म से एक शताब्दी पूर्व अपने इतिहास मे भारतवर्ष के वृत्तांतों का उल्लेख किया है। उस समय चीन देश में बौद्ध धर्म का अधिक प्रचार नहीं था। इसमें संदेह नहीं कि सम्राट् अशोक ने बौद्ध धर्म के शिक्षकों को मध्य एशिया में धर्मप्रचारार्थ भेजा था और वे लोग प्रचार करने मे बहुत कुछ सफलमनोरथ भी हुए थे।

बौद्ध धर्म की उदार नीति की चर्चा चीन देश मे दिनों दिन फैलती गई और ईसा के जन्म से ६७ वर्ष पीछे चीन के सम्राट् मिंगटो ने भारतवर्ष से बौद्ध शिक्षकों को बुलाने के लिये अपने दूत भेजे। दूत कश्यप-मातंग और धर्मरक्षक नामक दो आचार्यों

चीनी ग्रंथों में लिखा है कि सम्राट् मिंगटो ने ६१ सन् में स्वप्न देखा कि एक तप्त-कांचन-वर्ण पुरुष आकाश में उसके प्रासाद के ऊपर मँडरा रहा है। मंत्रियो से इस स्वप्न का फल पूछा तो सब ने कहा कि पश्चिम में गौतम नामक एक देवता है, वही आपको दर्शन देने आया था। सम्राट् ने एक पंडित और कई राजकर्मचारियो को उसके चित्र और उपदेश-

को उद्यान से अपने साथ चीन देश ले गए। इन्होने बौद्ध धर्म के अनेक ग्रंथों का अनुवाद चीनी भाषा मे कर वहाँ बौद्ध धर्म का प्रचार किया। बौद्ध धर्म के प्रचार से भारतवर्ष के साथ चीन देश का गुरु-शिष्य-संबंध सुदृढ़ होता गया। बौद्ध धर्म के प्रचार के साथ साथ चीन मे इस धर्म के अनेक भक्तो ने प्रव्रज्या ग्रहण की और चीन देश मे भिक्षुसघ का संगठन हो गया। तब से अनेक भिक्षु भारतवर्ष की ओर धर्मयात्रा के लिये आते रहे, पर पंजाब से आगे कोई नही बढ़ा और न किसी ने अपनी धर्मयात्रा का विवरण ही लिख छोड़ा जिससे उसकी यात्रा का कुछ पता चल सके।

ऐसे यात्रियो मे जिन्होने भारतवर्ष के भिन्न भिन्न नगरों और देशों मे भ्रमण किया और जो अपना यात्राविवरण लिखकर छोड़ गए हों फाहियान सब से पहला चीनी यात्री है। फाहियान का जन्म कब हुआ और कितनी अवस्था मे उसने यात्रारभ किया इसका ठीक पता नहीं चलता। कोई तो उसे पूर्वीय सीन-वंशी और कोई लुइ-वश के सुग घराने का वतलाता है, पर यह निश्चित है कि उसका जन्म वुयंग मे हुआ था। वुयंग "पिंगयांग"

ग्रंथो के लिये भेजा। वे लोग भारत की ओर से कश्यप-मातग और धर्म-रक्षक को लेकर चीन गए। वहाँ इन दोनों ने बौद्ध धर्म का प्रचार किया। सब से पहले एक चौवंशी राजकुमार ने बौद्ध धर्म स्वीकार किया। मिंग ने उसके लिये एक सघाराम बनवा दिया और अनेक चित्र वहाँ स्थापित कर दिए। यह संघाराम 'माटेग चौकलान' कहलाता है।

प्रदेश मे है और अब तक 'शान-सी' के अंतर्गत है। उसका पहला नाम कुंग था। उसके जन्म के पूर्व उसके माता पिता की संतान जीती न थी। तीन लड़के आठ दस वर्ष की अवस्था मे दूध के दॉत टूटने के पहले ही मर चुके थे। उसके पिता ने 'कुंग' को जन्मते ही भिक्षुसंघ को, जीने के लिये, चढ़ा दिया था। 'सामनेर' बनाकर वह प्रेमवश उसे घर ही पर रखता था। दैवयोग से 'कुंग' कठिन रोगग्रस्त हो गया। पिता ने घबड़ाकर उसे विहार में कर दिया। वहां 'कुंग' अच्छा हो गया और जब पिता उसे घर लाने के लिये गया तो 'कुंग' घर न आया और विहार ही मे रहने लगा।

'कुंग' की अवस्था दस वर्ष की थी जब उसके पिता का देहांत हो गया। अब उसकी विधवा माता रह गई। कुंग का चचा दौड़कर उसके पास विहार मे गया और उसने बहुत चाहा कि वह विहार से घर आकर रहे और अपनी दुखिया माता का अवलंब बने, पर 'कुंग' घर न आया। 'कुंग' ने स्पष्ट कह दिया कि मैं अपने पिता की इच्छा से घर त्यागकर यहां नहीं आया हूं, वरन् मैं स्वयं गृहस्थों के संसर्ग से अलग रहना चाहता हूं। यही कारण है कि मैं यहां आया, मुझे भिक्षु बनना रुचता है। बेचारे चचा को विवश हो उसकी बात माननी पड़ी और विशेष आग्रह न कर वह अपने घर लौट गया। थोड़े दिनों बाद उसकी माता भी मर गई। यह समाचार सुन 'कुंग' अपने घर आया और उसे समाधि दे फिर विहार को लौट गया।

।

एक समय की बात है कि 'कुग' २० सामनेरों के साथ विहार के खेत* मे धान काटता था। इसी बीच कुछ मर-भुक्खे चोर खेत मे पहुँचे और बलपूर्वक काटे हुए धान को उठा ले चले। उन्हे देख सब सामनेर भाग निकले पर कुंग खेत मे डटा रहा। वह कहने लगा "ले जाना ही चाहते हो तो जितना हो सके उठा ले जाओ। पर भाई पहले जन्म मे दान न देने का तो यह फल है कि तुम इस जन्म मे दरिद्र हुए। अब इस जन्म में तुम दूसरों की चोरी करते फिरते हो, भावी जन्म मे इससे क्या दुःख पाओगे, मुझे तो यही सोचकर दुःख होता है।" यह कह कुंग खेत छोड अपने साथियों के साथ विहार मे चला आया। उसकी बातों का चोरों पर इतना प्रभाव पड़ा कि खेत से सब के सब लौट गए और उन्होने धान को हाथ से भी न छूआ। 'कुंग' के साहस को सुन विहार के सब भिक्षु उसकी प्रशंसा करने लगे।

'सामनेर' अवस्था समाप्त कर कुग ने 'प्रव्रज्या' ग्रहण की। उस समय उसका नाम फाहियान पड़ा। चीनी भाषा मे 'फ़ा' का अर्थ 'धर्म' 'विधि' और 'हियान' का अर्थ 'आचार्य' 'रक्षक' है। अतः फाहियान का अर्थ हमारी भाषा मे 'धर्मगुरु' होता है। धार्मिक शिक्षा ग्रहण कर जब फाहियान पिटक ग्रथो का

---

* जैसे भारतवर्ष मे निहंगम साधुओं के मठ की जागीरें है, और वे कृपिकर्म करते है, वैसे ही चीन देश मे भी विहारो और सघारामो मे जागीरें लगी हुई है। विहार की ओर से खेती बारी होती है।

अभ्यास करने लगा तो उसे जान पड़ा कि जो अंश इस देश मे है वह अधूरा और क्रमभ्रष्ट है। उसे विनय-पिटक की, जिसका विशेष संबंध श्रमणों के संघ से है, यह अवस्था देख बहुत दुःख हुआ। उसने अपने मन मे दृढ़ संकल्प किया कि जिस प्रकार हो सके विनय-पिटक की पूरी प्रति भारतवर्ष से लाकर मैं उसका प्रचार इस देश के भिक्षुसंघ मे करूंगा। वह इसी चिंता मे था कि 'ह्वेकिंग' 'तावचिंग', 'ह्वेयिंग', और 'ह्वेवीई' नामक चार और भिक्षुओं से उसकी भेंट हुई। उस समय फाहियान 'चागगान' के विहार मे रहता था। पाँचों भिक्षुओं ने मिलकर यह निश्चय किया कि हम लोग साथ साथ भारतवर्ष की ओर तीर्थयात्रा को चलें और तीर्थों मे भ्रमण करते हुए वहां के भिक्षुओ से त्रिपिटक के ग्रथों की प्रतियां प्राप्त करें। यह सम्मति कर सन् ४०० मे सब के सब 'चांगगान' से भारतवर्ष की यात्रा के लिये चले।

'चांगगान' से 'लुंग' प्रदेश होकर वे 'कीनकीई' प्रदेश में आए। यहां उन्होंने 'वर्षावास' किया। भारतवर्ष, बर्मा, स्याम और लका के बौद्ध भिक्षु वर्षा ऋतु मे एक ही स्थान पर रहते हैं। चीन देश में वर्षावास पाँचवें वा छठे महीने की कृष्ण प्रतिपदा से प्रारंभ होता है। वहां अमांत मास का व्यवहार होता है। वर्ष का आरंभ फाल्गुन शुक्ल प्रतिपदा से होता है। वर्षाकाल तीन मास का होता है। जो लोग वर्षावास पंचम मास की कृष्ण प्रतिपदा से करते हैं उनके वर्षावास की समाप्ति अष्टम मास की पूर्णिमा के दिन होती है और जिनके वर्षावास का आरंभ

षष्ठ मास की कृष्ण प्रतिपदा से होता है उसकी समाप्ति वे नवम मास की पूर्णिमा को करते हैं। वर्षावास की विधि और कर्त्तव्य का विवरण आईसिग के प्रथम अध्याय मे दिया है।

'कीनकोई' से यात्री लोग साथ साथ 'लियंग' होते हुए 'यांगलो' पर्वत पार कर 'चांगयी'' पहुँचे। 'चांगयी'' चीन की प्रसिद्ध दीवार के पास लांगचावा के कुछ उत्तर-पश्चिम की ओर है। उस समय यह नाका था। चीन देश का माल यही से होकर बाहर जाता था और पश्चिम का माल इसीसे होकर भीतर आता था। उस समय वहां अशांति फैली हुई थी। देश मे होकर जाना कठिन था। निदान यात्रियों को वहां कुछ काल के लिये ठहर जाना पड़ा। 'चांगयी:' के अधिपति ने यात्रियों की बड़ी आवभगत की। यही पर उन्हे 'चेयेन', 'ह्वेकीन', 'पावयुन', 'सांगशाओ' और 'सांगकिंग' नामक पाँच और यात्री मिले। ये लोग भी भारतवर्ष की ओर तीर्थयात्रा के लिये जा रहे थे। वे भी रोक लिए गए। सब के सब वहाँ लगभग वर्ष भर ठहरे रहे और विप्लव के कारण आगे न बढ़ सके। यहीं पर सब को वर्षावास पड़ा और मिल जुलकर यहीं सबो ने वर्षा बिताई। जब देश में शांति स्थापित हो गई तो वहां से वे साथ साथ 'तुनह्वांग' नगर मे गए। 'तुनह्वाग' नगर चीनी दीवार के बाहर पश्चिम दिशा मे पड़ता है। यहां कुछ दिन ठहर कर 'पावयुन' आदि को वही छोड़ फाहियान आदि जो पहले वहां पहुँचे थे गोबी मरुस्थल मे चल पड़े। वहां के हाकिम वा शासक ने बड़ी कृपा

कर उनकी यात्रा के लिये आवश्यक प्रवंध कर दिया । गोवी मरुस्थल मे सत्रह दिन चलकर वड़ी कठिनाई से इन्होने उसे पार किया । वे लगभग १५०० ली चले होगे । फिर यात्री ' शेनशेन ' जनपद मे पहुँचे ।

शेनशेन जनपद कहां था इसका ठीक पता अब तक नहीं चला है । 'फाहियान' ने इस देश के विषय मे केवल इतना ही लिखा है कि "यह पहाड़ी प्रदेश है । भूमि यहां की पथरीली और वनजर है । साधारण अधिवासी मोटे वस्त्र पहनते हैं । राजा का धर्म हमारा ही है ।" युरोपीय विद्वानों का मत है कि इस देश की राजधानी लोब वा लोपनोर झील के किनारे थी । फाहियान आदि यहां एक मास के लगभग रहे, और १५ दिन उत्तर पश्चिम चलकर ऊए देश मे पहुँचे । ऊए मे उस समय चार हजार से अधिक हीनयान के भिक्षु रहते थे । उनके आचार-विचार कठिन थे । वहां कई विहार भी थे । ऊए का स्थान अव तक निश्चित नही हुआ है । वाटर साहेब का मत है कि "हम इसे 'खरशर' के पास माने अथवा 'खरशर' और 'कुश्वा' के मध्य मानें तो अयुक्त नही होगा ।" पर फाहियान ने उंतालीसवें पर्व मे 'खरशर' के लिये जो संकेताक्षर प्रयुक्त किए हैं वे 'ऊए' से विलकुल ही नही मिलते । अतः ऊए को 'खरशर' मानना तो किसी दशा मे ठीक नही प्रतीत होता है । यह संभव है कि 'शेनशेन' और 'ऊए' दोनों जनपद अव गोवी की मरुभूमि मे वालू के नीचे दब गए हों । इन्ही जनपदों के नगरों

श्रौर विहारों के कुछ खंडहरों का पता रूसी श्रौर अन्य युरोपीय यात्रियों को मरुभूमि में मिला है जहां की खुदाई से खरोष्टी श्रौर ब्राह्मी आदि लिपियों मे लिखी हुई अनेक प्राचीन पुस्तकों की प्रतियां उपलब्ध हुई हैं। पर जब फाहियान ने यह लिखा है कि हम ऊए से दक्षिण-पश्चिम चलकर खुतन मे आए तो ऊए खुतन से उत्तर-पूर्व रहा होगा। ऊएवालों के अशिष्टाचार के विषय मे फाहियान ने लिखा है कि "ऊए के अधिवासियों ने सुजनता श्रौर उदारता त्यागकर विदेशियो के साथ क्षुद्रता का व्यवहार किया।" इसे जब 'सुगयुन' श्रौर 'हुईसांग' के तुर्किस्तान के वर्णन से जिसे उन्होने इन शब्दो मे किया है कि "इस देश के अधिवासियो के आचार-व्यवहार असभ्योचित हैं" मिलाया जाय तो यह कहना पड़ता है कि 'ऊए' कहीं तुर्किस्तान के किनारे तो नहीं था।

फाहियान आदि 'ऊए' के 'उद्देशिक' कुंगसन के यहॉ ठहरे। उसने उनका बड़ा सत्कार किया। वहां वे दो ढाई महीना रहे। 'पावयुन' आदि जिनका साथ तुनह्वांग नगर मे छूट गया था यहां आ गए, पर इस देश के अधिवासियों के अशिष्टाचार श्रौर कुव्यवहार से दु:खी हो 'चेयेन' 'ह्वेकीन' श्रौर 'ह्वेवीइ' तो 'कावचांग' लौट गए श्रौर शेष फाहियान आदि 'कुगसन' की कृपा से दक्षिण-पश्चिम की श्रोर चले। आगे के देश उन्हें निर्जन मिले श्रौर राह मे अनेक नदियों को उतरना पड़ा, भॉति भॉति के कष्ट उठाने पड़े। फाहियान ने लिखा है कि "ऐसे दु:ख किसी ने

(कभी) न उठाए होंगे।" सब कठिनाइयों को झेलते झेलते ५ महीने मे चलकर सब यात्री खुतन मे पहुँच गए।

'खुतन' नगर 'खुतन' नामक नदी के किनारे है। वहां बौद्ध धर्म का उस समय अच्छा प्रचार था। अनेक विहार और संघाराम भी थे, अधिवासी बड़े धर्मभीरु थे, घर घर स्तूप थे, श्रमणों का बड़ा आदर था। फाहियान आदि वहां 'गोमती' नामक एक प्रसिद्ध विहार मे ठहरे। 'ह्वेकिंग' 'तावचिंग' 'ह्विता' तो वहां से फाहियान आदि का साथ छोड़ कीचा (कैकय) देश की ओर चले गए। फाहियान आदि वहां भगवान की रथयात्रा देखने के लिये तीन महीने तक ठहर गए। रथयात्रा चतुर्थ मास की पहली तिथि से प्रारभ हुई और चौदहवी को समाप्त हुई। * रथयात्रा देख कर 'सांगशाओ' तो एक तातार

संभवत फाहियान ने इस वर्ष अपना वर्षावास छठे महीने मे प्रारंभ किया था। चौथे मास का शुक्ल पक्ष तो रथयात्रा में ही विगत हो गया था। यदि वह पंचम मास की कृष्ण प्रतिपदा से वर्षावास प्रारंभ करता तो केवल एक ही मास रह गया था। इस बीच मे फाहियान आदि को खुतन से जीहो पहुँचने में २५ दिन लगे। जीहो मे १५ दिन तक ठहरे। फिर ४ दिन दक्षिण चलकर सुंगलिंग पर्वत मिला और उसे पार कर यूव्हे जनपद को गए। इसमें फाहियान को २५ + १५ + ४ = ४४ दिन लगे। अब यदि वह पंचम मास के मध्य कृष्ण प्रतिपदा से वर्षावास आरभ करना चाहता तो उसे जीहो मे वर्षावास पड़ता सो भी यदि वह ठीक चतुर्थ मास की कृष्ण प्रतिपदा को खुतन से रवाना होता। पर इसमे संदेह नहीं कि वहां चौथे मास के द्वितीय पक्ष के भी अधिक

के साथ 'कुफेन' देश को, जिसे अब काबुल कहते हैं, चला गया और फाहियान आदि २५ दिन चलकर 'जीहो' मे आए। यात्रा मे यह नहीं लिखा है कि खुतन से किस ओर चले, केवल इतना लिखा है कि फाहियान आदि जीहो की ओर चले। मार्ग मे २५ दिन चलकर उस जनपद मे पहुँचे। इस जनपद का पता अब तक हमारे युरोपीय विद्वानों को नहीं लगा है, कोई इसे 'यारकद' और कोई इसे 'माशकुर्गन' बताते हैं। यहां का पता जो कुछ यात्रा-विवरण से चल सकता है वह यह है कि फाहियान आदि यहां १५ दिन रहे, फिर जीहो से दक्षिण चार दिन चले और सुगलिग पर्वत पार कर 'यूऽहे' जनपद मे पहुँचे। 'यूऽहे' का भी पता हमारे सुज्ञ विद्वानों को अब तक नहीं चला है। केवल वाटर साहब बहादुर ने इतनी अटकल लगाई है कि यह वर्तमान 'अकताश' होगा। सुंगलिग पर्वत के विषय मे इतना भी नहीं लिखा गया है कि इसका कुछ पता चला है वा नहीं। लेगी साहब ने इतना और कर दिखाया है कि सुंगलिंग शब्द का अनुवाद पर्व के आदि मे Onion mountains मोटे भव्य अक्षरों मे छाप दिया है। अब विचारना यह है कि ये दोनो जनपद 'जीहो' और 'यूऽहे' कौन हैं और कहाँ हैं? क्या आज कल हम उनको निर्दिष्ट कर सकते हैं वा नहीं?

दिन बीत गए थे और पचम मास का मध्य काल मार्ग मे ही गत हो गया। निदान आपत्ति-धर्म के अनुसार उसने अपना वर्षावास षष्ठ मास के मध्य से यूऽहे में आरंभ किया।

पहले हमको यह देखना चाहिए कि यात्रा-विवरण से इन दोनो जनपदो का किस स्थान मे होना संभव है। खुतन से यात्री लोग किधर चले इसका यात्रा-विवरण से कुछ भी पता नहीं चलता। इतना अवश्य कहा जा सकता है कि जीहो और खुतन के बीच के मार्ग को यात्रियों ने २५ दिन चलकर पार किया। यद्यपि इसका कुछ उल्लेख नहीं पर इतना अनुमान किया जा सकता है कि मार्ग सुखकर था। यह अनुमान ठीक भी है। अन्यथा कष्टतर होता वा मार्ग मे पर्वत और नदियां अधिक पड़ती तो इसका अवश्य कुछ उल्लेख होता। 'जीहो' और 'यून्हे' जनपदो के मध्य सुगलिंग पर्वत पड़ता था और दोनों जनपदों के मध्य केवल इतना अंतर था कि यात्री केवल चार दिनों मे जीहो से सुंगलिंग पार कर यून्हे मे पहुँच गए। इतना ही नहीं, यह भी उसी के आधार पर निश्चित रूप से अनुमान किया जा सकता है कि 'यून्हे जनपद' सुंगलिंग के दक्षिण ओर पर्वत के मूल मे पड़ता था। यून्हें पर्वत के दक्षिण और जीहो पर्वत के उत्तर मे था। इतनी बात और भी ध्यान में रखने योग्य है कि फाहियान ने जनपदों का नाम जहां ठीक पता और नाम नहीं मालूम हो सका है प्रायः उन नदियों के नाम पर ही लिखा है जो उन जनपदों में थीं। खुतन, कुफेन आदि इसके अनेक स्पष्ट उदाहरण हैं। फिर यह कहना अयुक्त न होगा कि 'जीहो' और यून्हे अवश्य ऐसी नदियां थीं जो उन जनपदों मे होकर प्रवाहित थीं। सुंगलिंग पर्वत का ठीक ठीक पता आज तक नहीं

लगा है और न कोई पर्वत मध्य एशिया का इस नाम से निर्दिष्ट होता है। इस पर्वत का जो अनुवाद लेगी साहब ने प्याज (Onion) किया है वह भी ध्यान देने योग्य है। पर्वत का नाम यात्रियो ने सुंगलिग वा प्याज अवश्य किसी कारणवश ही रखा है और अधिक संभव है कि उसकी आकृति और वर्ण पर ही ध्यान देकर उन्होंने ऐसा नाम रखा हो। सुंगलिग पर्वत का उल्लेख इस पुस्तक मे कई स्थान पर है। उनके देखने से यह प्रतीत होता है कि हिमालय, हिदुकुश, कराकोरम और पामीर के लिये यह पद लाया गया है। ये पर्वत हिमाच्छन्न रहते हैं और ऊपर से देखने से प्याज से देख पडते हैं। अब यदि मध्य एशिया के नकशे पर ध्यान देकर इस पहेली को विचारें कि वह कौन दो नदियां हैं जिनके बीच की भूमि प्याज के आकार की सफेद उभड़ी हुई हो अथवा जिनके मध्य कोई ऐसा पर्वत हो जो प्याज के समान उभडा हुआ अधिक ऊँचा नीचा न हो और दोनो नदियों के बीच अंतर भी इतना कम हो कि यात्री उसे पार कर झट उत्तर से दक्षिण पहुँच जाय, तो यह झट विचार में आता है कि वे दोनो नदियां 'दरिया' और 'आक्सस' हैं और उनके बीच की वह प्याज सी उभड़ी हुई भूमि पामीर* है जिसे

---

* यह पामीर हिमालय की पश्चिमी नोक है। इसीलिये छठे पर्व मे हिमालय को भी सुंगलिंग ही लिखा है। हिमालय का प्रसार जरफसां तक माना जाता था और वह ऊँची भूमि जो थियनशान और कराकोरम के मध्य सीहून और जीहून के बीच मे है हिमालय का ही विस्तार थी। पुराणो में थियनशान को मेरु लिखा है। चीनी भाषा में थियन स्वर्ग को कहते है।

यात्रियों ने अपनी यात्रा में हिमालय का विस्तार समझ कर सुंगलिंग लिखा है। इन दोनों नदियों के प्राचीन नामों पर ध्यान देने से इस अनुमान की और भी पुष्टि होती है। 'दरिया' का प्राचीन नाम 'सीहून' और 'आक्सस' का नाम 'जीहून' है। इन दोनों के मध्य पामीर भी है और दोनों उत्तर और दक्षिण पड़ती भी हैं। अधिक संभव जान पडता है कि फाहियान ने 'सीहून' को 'जीहो' और 'जीहून' को 'यूव्हे' लिखा हो। खुतन से सीहून नदी की ओर आने में मार्ग भी उतना दुष्कर नहीं है और न बीच में कोई बड़ी नदी वा और पहाड़ है। उनके बीच का अंतर भी इतना ही है जिसे यात्रियों को १०, १२ दिन मे चलकर तै करने मे कोई विशेष अड़चन नहीं पड़ सकती। अवश्य यात्री खुतन से पश्चिम ओर चले थे और संभवत. समरकंद के आस पास ही से दक्षिण की ओर घूमे थे। वहीं कहीं सीहून नदी के किनारे वह नगर था जहां १५ दिन रहकर चार दिन दक्षिण चलकर पामीर पार कर वे जीहून के किनारे पहुँचे। सीहून प्रदेश को सुयेनच्वांग ने अपने यात्रा-विवरण के तीसरे अध्याय में शीहोन लिखा है। अधिक संभव है कि चीनी भाषा मे भी किसी ऐसे संकेत का प्रयोग हो जिसका उच्चारण शीहोन वा उससे कुछ मिलता जुलता हो। प्रदेशों का संकेत दो भिन्न भिन्न यात्रियों के विवरणों में प्रायः विभिन्न देखने में आया है। उनका उच्चारण भी उन लोगों के श्रवण में जैसा आया लिख दिया है। हमारे युरोपीय सज्जनों ने भी दिल्ली

को 'डेलही' और मथुरा को 'मुट्रा' कर डाला है। फिर एक विदेशी के लिये जिसने खुतन को 'यूतान' लिखा सीहून को जीहो और जीहून को यून्हे करने मे क्या आश्चर्य। अत. यह बात सुनिश्चित जान पड़ती है कि 'जीहो' और 'यून्हे' सीहून और जीहून के आसपास के प्रदेश थे और संुगलिंग पर्वत पामीर ही था।

यून्हे मे यात्रियों को वर्षा पड़ी और वहीं उन्होने वर्षावास किया। तीन मास वर्षा बिताकर वे कीचा गए। कीचा जाते हुए यात्रियो को पर्वत पर होकर जाना पड़ा। इतना तो उन लोगों के यात्रा-विवरण मे है पर यह पता नही चलता कि यून्हे से किस दिशा मे वे गए, केवल इतना लिखा है कि "पहाड़ मे २५ दिन चलकर 'कीचा जनपद' मे पहुँचे।" कीचा का भी ठीक पता अब तक युरोप के विद्वानों को नही चला है। कोई इसे काश्मीर, कोई लदाख, कोई खस, कोई कुछ अनुमान करता, कोई कुछ। तीसरे पर्व के इस वाक्य से कि "व्हेकिंग' 'तावचाग' और 'व्हेता' पहले ही 'कीचा' जनपद की ओर चले गए" यह निश्चय होता है कि कीचा का प्रदेश चीनियों को ज्ञात था। वहां का मार्ग वे लोग जानते थे, इसी कारण 'व्हेकिग' आदि बिना किसी अगुआ के झट कीचा की ओर चले गए। कीचा मे बुद्धदेव का दाँत और उनकी एक पीकदान भी थी। इसी के दर्शन के लिये यात्री आया करते थे। कीचा के प्रदेश को फाहियान ने "पहाड़ी और ठढा" बतलाया है और लिखा है कि वहां गेहूं के अतिरिक्त

और अन्न नहीं होते। इससे भी प्रतीत होता है कि यह जनपद पर्वत के अंतर्गत था। यात्रियों को कीचा तक आने मे २५ दिन लगे थे, अत. जीहो से कीचा तक का अंतर २५० मील से लेकर ५०० मील तक हो सकता है, सो भी पर्वत से जहां चढ़ाव उतार हो। फाहियान के खुतन से जीहो की ओर चले जाने से यह भी कहा जा सकता है कि वह कीचा होकर आना नहीं चाहता था। उसने समझा था कि भारतवर्ष कहीं खुतन से पश्चिम होगा, पर जब वह जीहो पहुॅचा तो उसे मालूम हुआ होगा कि वह दक्षिण-पूर्व दिशा मे है। निदान उन्हे पामीर उतर कर यूव्हे वा जीहून के किनारे आना पड़ा और वहा से पर्वतों मे होकर वे 'कीचा' पहुँचे जो उन्हे ज्ञात था।

अब विचारणीय यह है कि कीचा कौन प्रदेश था। कीचा से यात्री पश्चिम दिशा मे चले और ३० दिन तक पर्वत मे चलकर 'तोले:' मे पहुँचे थे और वहां झूले से निकल कर सिधु नद पार करते ही 'वूचंग' वा उद्यान प्रदेश मे पहुॅच गए थे। फिर उद्यान से दक्षिण ओर उतर कर, सुहोतो वा सुआत मे आए थे। यद्यपि यात्रियों ने यह नहीं लिखा है कि उद्यान से कितने दिनों मे वे सुआत पहुॅचे तो भी उद्यान का सुआत के उत्तर होना पाया जाता है। आने में यात्रियों को अवश्य कुछ काल लगा होगा। उद्यान प्रदेश के पूर्व सिंधु नद पड़ता ही नहीं है। यदि सिधु नद माना ही जाय तो उद्यान पहुॅचते पहुॅचते यात्रियों को एक बार और सिधु नद, चाहे वह 'स्कर्दो' के पास हो या कहीं

और, अवश्य पार करना पड़ता, पर इसका उल्लेख यात्रा-विवरण में कहीं देखने में नहीं आता। इस पर ध्यान देते हुए यह अनुमान किया जा सकता है कि यात्रियों ने किसी अन्य नदी को पार किया जो उद्यान के पूर्व मिली जिसे या तो भ्रमवश सिंधु नद लिख दिया है या उन चिह्नो का कुछ और अर्थ है।

यह अनुमान ठीक भी जँचता है। वाल्मीकीय रामायण के अयोध्या काण्ड सर्ग ७१ में भरतजी को कैकय से अयोध्या आते निम्नलिखित जनपदादि उज्जिहान तक पड़े थे—

स प्राङ्मुखो राजगृहादभिनिर्याय वीर्यवान्।
ततः सुदामां द्युतिमान्सतीर्थावेक्ष्य तां नदीम्॥
ह्रादिनीं दूरपारां च प्रत्यक्स्रोतस्तरङ्गिणीम्।
शतद्रुमतरच्छ्रीमान्नदीमिक्ष्वाकुनन्दनः॥
ऐलधाने नदीं तीर्त्वा प्राप्य चापरपर्वतान्।
शिलामाकुर्वतीं तीर्त्वा आग्नेयं शल्यकर्षणम्॥
सत्यसंधः शुचिर्भूत्वा प्रेक्षमाणः शिलावहाम्।
अभ्यागत्स महाशैलान्वनं चैत्ररथं प्रति॥
सरस्वतीं च गंगां च युग्मेन प्रतिपद्य च।
उत्तरान्वीरमत्स्यानां भारुण्डं प्राविशद्वनम्॥
वेगिनीं च कुलिगाख्यां ह्रादिनीं पर्वतावृताम्।
यमुनां प्राप्य संतीर्णो बलमाश्वासयत्तदा॥
राजपुत्रो महारण्यमनभीक्ष्णोपसेवितम्।
भद्रो भद्रेण यानेन मारुतः खमिवात्ययात्॥

भागीरथीं दुष्प्रतरां सोऽंशुधाने महानदीम् ।
उपायाद्राघवस्तूर्णं प्राग्वटे विश्रुते पुरे ॥
स गंगां प्राग्वटे तीर्त्वा समायात्कुटिकोष्टिकाम् ।
सबलस्तां स तीर्त्वाऽथ समगाद्धर्मवर्द्धनम ॥
तोरणं दक्षिणार्धेन जम्बूप्रस्थं समागमत् ।
वरूथं च ययौ रम्यं ग्रामं दशरथात्मज. ॥
तत्र रम्ये वने वासं कृत्वासौ प्राङ्मुखो ययौ ।
उद्यानमुज्जिहानायाः प्रियका यत्र पादपा. ॥

यहा सरस्वती, गंगा, यमुना, भागीरथी और फिर गंगा से इन शतद्रु, गंगा, यमुना और सरस्वती के अतिरिक्त अन्य छोटी छोटी और तीक्ष्णप्रवहा पहाड़ी नदियों से अभिप्राय है जो सिंधु नद मे कराकोरम, हिंदुकुशादि पर्वतो से निकलकर आ मिली हैं। यहां ऊए-निवासी सुगयुन और हुईसांग के यात्रा-विवरण से भी हम थोड़ा सा अंश उद्धृत करते हैं जिससे पाठको को यह स्पष्ट हो जायगा कि वाल्मीकिजी के विवरण का उससे कहाँ तक साम्य है। वे खुतन से सीधे उद्यान को आए थे। उनका कथन है कि "सन कोहाई के द्वितीय वर्ष के सातवे महीने की २९ वीं तिथि को हम लोग यारकिंग राज्य मे पहुँचे। यहांवाले पर्वत पर रहते हैं। साग भाजी यहां खूब उत्पन्न होती है। वही सब लोग खाते हैं, उसे पीस कर आटा बनाकर रोटी पकाते हैं। वे लोग हिंसा नहीं करते। जो मछली खाते हैं वे मुर्दे पशुओं का मांस भी खाते हैं। इन लोगों की रीति नीति बोली बानी

सब खुतन देशवालों की सी है पर लिपि उनकी ब्राह्मी है। यहां ये पाँच दिन मे पहुँचे।

"आठवे महीने के पहले सप्ताह मे वे कवंध देश मे आए और ६ दिन पश्चिम ओर चल के 'सांगलिंग' पर्वत पर चढ़े। फिर पश्चिम ओर और ३ दिन चल के 'किउएउ' नगर मे पहुँचे। वहां से तीन दिन चलकर 'पूहोई' पर्वतमाला मे पहुँचे। यह स्थान बडा ठंढा है। जाड़े गर्मी दोनों ऋतुओं मे वर्फ से ढका रहता है। पर्वत पर एक ह्रद है। उसमे एक नाग रहता है। पूर्व काल मे एक व्यापारी रात के समय इस ह्रद के किनारे पहुँचा। नाग उस समय कुपित था, इसलिये उसी समय उसने वनिये को मार डाला। 'प्यंटो' राज्य का राजा यह समाचार सुन अपने पुत्र को राजसिंहासन पर वैठा ब्राह्मणो से मंत्र की शिक्षा प्राप्त करने के लिये उद्यान जनपद मे गया। वहां चार वर्ष रहकर और मंत्र के प्रयोगों को सीखकर वह अपने राज्य मे आया और नाग पर अपने मंत्र का प्रयोग करने लगा। देखते देखते नाग मनुष्य का रूप धर के निकला और अपने पाप-कर्म पर पश्चात्ताप करता हुआ राजा के पास आया। राजा ने उसे उस ह्रद से निकाल कर सांगलिंग पर्वत पर भेज दिया। वर्त्तमान राजा उससे वारहवीं पीढ़ी मे है।

"इस स्थान से पश्चिम ओर का मार्ग अत्यत ऊँचा नीचा

---

* संभव हे कि मूल में "सुंगलिग" हो और अनुवादको ने सागलिग कर दिया हो। मिलाओ पर्व ७ फाहियान।

है। यह बहुत ही ऊभड़ खाभड़ और ऊँचे नीचे पर्वतों से परिपूर्ण है। इसके सामने मांगमेन पर्वत के मार्ग कुछ नहीं हैं। धीरे धीरे खसककर हम लोग सांगलिंग पर्वतमाला पर चढ़े और चार दिन मे पर्वत के शिखर पर पहुँचे। यहां से नीचे देखने से मालूम होता था कि हम लोग आकाश मे लटके हुए हैं। 'हान पानरो' राज्य इस पर्वतमाला के शिखर तक है। यहां यह प्रवाद प्रचलित है कि यह स्थान स्वर्ग और पृथ्वी के वीचोबीच ठहरा है। यहां के लोग खेत सींचने के लिये नदी के जल को काम मे लाते हैं। यहां के लोगों से कहा जाय कि मध्य देश में लोगों के खेतों मे पानी वरसता है और उससे उनकी खेती पानी पाती है तो ये लोग हँसते हैं और कहते हैं "हुं: स्वर्ग मे भला इतना पानी कहां है?"

"इस देश की राजधानी के उत्तर-पूर्व मे एक वेगवती नदी है। सांगलिंग पर्वतमाला के ऊपर कोई वृक्ष वनस्पति नहीं उपजती है। इस महीने मे ठंढी वायु बहती है और उत्तर सहस्र मील तक बर्फ गिरती है।

"नवें महीने के मध्य मे हम लोग 'पोहो' प्रदेश में पहुँचे। इस स्थान के भी पर्वत ऊँचे हैं और वहां जाने मे बड़ी कठिनाई पड़ती है। यहां के राजा ने एक नगर वसा रखा है। जब वह पर्वत पर आता है तो इसी नगर मे रहता है। इस देश के लोग सुंदर कपड़े पहनते हैं और कभी कभी चमड़े का भी व्यवहार करते हैं। यहां बड़ा जाड़ा पड़ता है। इतनी कड़ी सर्दी पड़ती है

कि लोग पर्वत की कदराओं मे छिपे पड़े रहते हैं और ठढी हवा चलने के कारण मनुष्य वन्य पशुओं के साथ रहने पर बाध्य होते हैं। इस देश के दक्षिण हिमालय पर्वत पड़ता है। इस पर्वत से साय प्रात. मोती के मुकुट के सदृश भाफ उठा करती है।

'दसवे महीने के पहले पाख मे हम लोग 'ईखा' प्रदेश मे पहुँचे। इस देश के खेतो मे पहाड़ो नदियों से पानी पहुँचता है। सारी धरती उपजाऊ है। घर घर के द्वार द्वार पर एक एक नदी बहती है। यहां कोई ऐसा नगर नहीं जिसके किनारे प्राचीर हो। यहां शांतिरक्षा के निमित्त स्थायी सेना है। वह सदा एक स्थान से दूसरे स्थान पर चलती फिरती रहती है। यहां के लोग ऊन के कपड़े पहनते हैं। जिन प्रदेशों मे नदिया हैं वहीं अन्न की अच्छी उपज होती है। ग्रीष्म ऋतु मे अधिवासी लोग पर्वत के ऊपर चले जाते हैं और जाड़े मे वहां से उतर कर अपने अपने गाँवो मे चले आते हैं। इनकी कोई लिपि नहीं है, सब असभ्य हैं। यह न तो ताराओं की गति जानते हैं और न इनके वर्ष मे महीनों के दिन नियत हैं। सब महीने बराबर हैं, बारह भागो मे वर्ष विभक्त है। चारों ओर की सब जातियाँ इन्हे कर देती हैं। इस जनपद के दक्षिण 'तिलो', उत्तर 'लिलो', पूर्व 'खुतन' और पश्चिम 'पोसी' है। प्राय: चालीस जनपद के लोग इन्हे कर देते हैं। जब इन जनपदो से कोई राजा के पास भेट लेकर आता है तो ४० हाथ लबी चौड़ी जाज़िम बिछाई जाती

है और ऊपर चाँदनी वा शामियाना टाँगा जाता है। राजा सोने के सिहासन पर राजकीय वस्त्राभूषण धारण करके बैठता है। सिंहासन चार शार्दूलो पर स्थापित रहता है। जब ऊए देश के राजदूत आए तो राजा ने बार बार प्रणाम करके उनसे पत्र लिया। सभा मे जाने पर एक मनुष्य नाम और उपाधि बताता है, फिर अभ्यागत को आगे करके लाता है। आवश्यक कार्य्य हो जाने पर सभा का विसर्जन होता है। यह केवल नियम ही का प्रतिपालन करते हैं। कोई बाजा आदि नहीं है। 'ईखा' देश के राजा के अंत:पुर मे स्त्रियां भी राजकीय वस्त्र पहनती हैं। इनके परिच्छद गज गज भर भूमि मे लोटते चलते हैं। उन्हे उठाने के लिये अलग नौकर लोग होते हैं। स्त्रियां इसके अति-रिक्त फुट भर या इससे भी अधिक लंबी आठ सींगे मस्तक पर धारण करती हैं। ये तीन तीन फुट तक लंबी लाल मूंगे की बनी और अनेक रंगों मे रँगी होती हैं. यही उनका मुकुट है। राजा के अंत:पुर की स्त्रियां जब कहीं अन्यत्र जाती हैं तो इन सब को धारण करके जाती हैं। घर मे वे सुवर्ण जटित पीढ़ो पर बैठती हैं। पीठ हाथी के दाँत की होती है और नीचे सिंह की चार मूर्तियाँ बनी रहती हैं। इसके अतिरिक्त मंत्रियों की स्त्रियों और राजा के अंत:पुर की स्त्रियों का आचार व्यवहार शेष बातों मे समान है। मंत्रियों की स्त्रियां भी मुकुट पर सींग धारण करती हैं। इन सींगों से चँदवे के सदृश झब्बे लटका करते हैं। धनी और दरिद्र दोनों के परिच्छद भिन्न भिन्न हैं। असभ्य

जातियों मे यही जाति सब से अधिक सभ्य है। इन लोगो का बौद्ध धर्म पर बहुत कम विश्वास है। प्राय: अधिक लोग अन्य धर्म के माननेवाले हैं। ये लोग जीवित प्राणी को मारके उसका मांस खा लेते हैं। पास के देशों से अनेक पशु कर मे आते हैं, उन्हींका मांस ये खाते हैं। 'ईखा' से हम लोगों की राजधानी २० हजार मील पर है।

"ग्यारहवें महीने के पहले सप्ताह मे हम लोग 'पोसी' देश की सीमा के प्रदेश मे पहुँचे। १७ दिन चलकर एक पहाड़ी और दरिद्र जाति के देश मे आए। इसका आचार व्यवहार असभ्य था। यहां कोई राजा का सम्मान नहीं करता। राजा भी बाहर निकलने पर वा अंत:पुर मे रहने पर अधिक परिचारकों को साथ नहीं रखता। इस देश मे एक नदी है। पहले तो यह इतनी गहरी नहीं है पर ज्यो ज्यों पर्वत मे नीचे घुसती गई है नदी की गति बदलती गई है और दो बड़े बड़े कुंड पड़ गए हैं। एक दैत्य यहां रहता है और बड़ी हानि पहुँचाता है। ग्रीष्म-काल मे तो दैत्य पानी बरसाता है और जाड़े मे तुषार गिराता है। इसके कारण यात्रियों को अनेक कठिनाइयां उठानी पड़ती हैं। यहां का तुषार इतना स्वच्छ और चमकीला है कि उसे देखने से दृष्टिशक्ति मारी जाती है। आँख न मूँदे तो अंधे होने मे कुछ देर नही लगती। यात्री लोग दैत्य की पूजा यदि चढ़ा देते हैं तो उन्हे आने जाने में कोई कठिनाई नही पड़ती।

"ग्यारहवे महीने के मध्य भाग मे 'सिमि' जनपद मे पहुँचे।

यह प्रदेश 'सांगलिंग' पर्वतमाला की सीमा पर है। देश की भूमि ऊवड़ खावड़ है। यहां के रहनेवाले अत्यत दरिद्र हैं। मार्ग ऊँचा नीचा वड़ा ही भयानक और दु खदायी है। घोड़ा सवारी लेकर इस मार्ग मे वड़ी कठिनाई से आ जा सकता है। 'पुकालाई' से उद्यान प्रदेश तक सेतु* वना है। सेतु लोहे की जंजीरो का है। पर्वत की घाटी को पार करने के समय इन्हीं जंजीरों के सहारे पार होना पड़ता है। ये जंजीरे अधर मे लगी हैं। नीचे देखने से घाटी की तरी दिखाई नहीं पड़ती है। जंजीर हाथ से छूटते ही यात्री ४०००० फुट नीचे गिर कर चकनाचूर हो जाते हैं। यात्री लोग इसी लिये पानी वा झड़ो के समय पर्वत की घाटी को पार करने की चेष्टा नहीं करते।

"बारहवे महीने मे हम लोग उद्यान प्रदेश मे पहुँचे। इस देश के उत्तर सांगलिंग पर्वतमाला और दक्षिण मे भारतवर्ष है।"

अव विचारने की बात यह है कि फाहियान ने भी तूले जनपद से उद्यान के बीच सिंधुनद के उतरने के समय सेतु का जैसा वर्णन किया है वह सुंगयुन और हुईसांग के सेतु के उस वर्णन से ठीक ठीक मिलता है जो अभी ऊपर पुकालाई और उद्यान के बीच वर्णन हो चुका है। वास्तव मे वह नदी सिंधु नहीं जान पड़ती। यह वही नदी है जिसका वर्णन 'सुगयुन' और 'हुईसांग' ने पोसो के संबंध मे किया है। यही नदी आगे

---

* फाहियान ने जिस सेतु का उल्लेख किया है वह या तो यही है अथवा कोई दूसरा होगा जो इस नदी पर रहा होगा।

चलकर गहरी हो गई और अंत मे खड्ड बन गई, जिसके पार करने के लिये झूले बनाए गए थे। यदि सिंधु नद होता तो सुंगयुन और हुईसांग ने अवश्य उसका उल्लेख किया होता। अब कीचा से तूले प्रदेश तक वेही जनपद थे और उनमे वेही नदियां आई थीं जिनका वर्णन वाल्मीकीय रामायण मे भरत की यात्रा के साथ है वा सुंगयुन और हुईसांग ने ऊपर उद्धृत किए शब्दों मे किया है।

कीचा जनपद के विषय मे यदि उसको 'खश' का ही रूपांतर माने तो Sylvain Levi के "खरोष्ट देश और खरोष्टी लिपि" मे निम्न-लिखित वाक्य विवेचनीय है "Khacas, Khacya or Khasya, in Chinese Kiacha, or K'ocha or K'oso (मैं Keicha को भी इसीसे स्फोट संबधवान कह सकता हूं) corresponding to the Sanskrit variants Khaca, Khasa, Khasa, and this writing is classed between that of Daradas (To-lo, Ta-lo-to with the note "mountain on the boarder of On-tchang, that is Udyana) and that of Cin Thus the land of Khaca, occupied the space between Dardistan on the lower Indus and the frontier of China proper." भावार्थ यह है—कि खश को ही चीनी भाषा मे कोचा आदि लिखा गया है। खश लिपि दरद और चीन के मध्य रखी गई है। अतः खश जनपद वह स्थान है जो दरदिस्तान और चीन के मध्य मे है।

इससे स्पष्ट है कि सिंधु नद के दक्षिण के प्रदेशों में (उसके दक्षिण दिशा में फिरने तक) जो कराकोरम और हिंदुकुश के इस पार पड़ते थे, पश्चिम मे दरद वा तूले और पूर्व में कीचा का प्रदेश था। इनके अंतर्गत इधर उधर अनेक और प्रदेश पड़ते थे जिनका उल्लेख फाहियान ने नहीं किया है। उनका विशेष वर्णन सुगयुन आदि के यात्रा-विवरण में है। अत: यूल्हे से फाहियान पूर्व की ओर कराकोरम के किनारे से कीचा को गया और फिर कीचा से दरद होता हुआ उद्यान में आया।

कीचा मे पहुँच कर फाहियान को ह्वेकिंग और उसके दो और साथी, जो खुतन से पहले यहां चले आए थे, मिले। यहां उस समय पंच परिषद का उत्सव पड़ा था। यह उत्सव पाँचवे वर्ष पडा करता था। इसका पूरा वर्णन पाँचवें पर्व मे सांगोपांग मिलता है। फाहियान ने इस देश के विषय में इतना ही लिखा है 'यह देश पहाड़ी और ठंडा है, सुनते हैं यहां गेहूँ के अतिरिक्त और अन्न नहीं होता। (इस) पर्वत के सामान्य लोग मोटा झोटा वस्त्र पहनते हैं। यह जनपद सुगलिंग पर्वतमाला के मध्य है। इस पर्वतमाला से जितना ही आगे बढे वनस्पति वृक्ष और फल सब विभिन्न मिलते गए। केवल बाँस विल्व और ईख ये ही तीन हमारे देश के हैं।" उस देश मे बुद्धदेव की पीकदान और दांत पूज्य पदार्थ थे। श्रमणों के आचार व्यवहार आश्चर्यजनक और इतने विधिनिषेधात्मक थे कि कहे नहीं जा सकते।

कीचा से यात्रियों ने पश्चिम की ओर एक मास तक चल कर सुगलिग पर्वतमाला पार की। यहा यह जान लेने योग्य है कि सुगलिंग पर्वत से यात्रियों का अभिप्राय उन सारी पर्वत-मालाओ के जाल से है जो सुगलिग से दक्षिण पामीर तक फैली हुई हैं और वहां खियनसान से मिली हैं। यद्यपि पहले भी वे जीहो और यून्हे के मध्य इसीके एक अंश को पार कर चुके थे पर फिर भी इस और अंश को पार करना पड़ा। फाहियान ने लिखा है "सुंगलिंग पर्वतमाला ग्रीष्म से हेमत तक तुषारावृत रहती है। उस पर विषधर नाग हैं। वे कुपित होकर विषयुक्त वायु छोड़ते हैं, तुषार बर्साते हैं, अंधड़ चलाते हैं और पत्थर बर्साते हैं। यहां इन आपत्तियों से बचकर दस हजार मे एक भी नहीं निकल पाता। इस देशवाले इसे हिमालय पर्वत कहते हैं।" इस देश मे उसने मैत्रेय बोधिसत्व की मूर्त्ति की अलौकिक कथा लिखी है।

इस देश से दक्षिण-पश्चिम पंद्रह दिन चलकर यात्रियों को दो पर्वतों के मध्य एक नदी मिली। उसे उन लोगो ने सिधु लिखा है, पर वह सिधु नहीं जान पड़ती। सुंगयुन और हुईसाग की यात्रा के विवरण से मिलाकर देखने से यह कोई और नदी जान पडती है। डाक्टर एम० स्टोन के मध्य एशिया के वर्णन मे जो उन्होने इंडियन अंटीकेरी सन् १९०६ पृष्ठ २९६ मे लिखा है, ये वाक्य हैं—

But it was on far more interesting ground that

I was soon able to verify the accuracy of those Chinese annalists, who are our chief guides in the early history and geography of Central Asia. Reasons, which cannot be set forth here in detail, had years before led me to assume that the route by which in 749 A.D. a Chinese army coming from Kashghar and across Pamirs had successfully invaded the territories of Yasin and Gilgit, then held by Tibetians, led over the Baroghil and Darkol passes. I was naturally very anxious to trace on the actual ground the route of this remarkable exploit, the only recorded instance of an organised force of relatively large size, having surmounted these passes, the formidable natural barriers which the Pamirs and Hindukush present to military action The ascent of the Darkot Pass, circ. 15,400 feet above the sea, which I undertook with this object on May 17, proved a very terrifying affair, for the miles of magnificent glacier over which the ascent led from the north were still covered by deep masses of snow, and only after nine hours of toil in soft snow, hiding much crevassed ice, did we reach the top of the pass. Even my hardy Mastuji and Wakhi guides had held it to be inaccessible at this early season. The observations, gathered there, and subsequently on the marches across Baroghil to the

Oxus, fully bore out the exactness of the topographical indications furnished by the official account of Koo-hseni-che's expedition As I stood on the glittering expanse of snow marking the top of the pass and looked down the precipitous slopes leading some 6,000 feet below to the head of Yasin valley, I felt sorry that there was no likelihood of a monument ever rising for the brave Corean general who had succeeded in moving thousands of men across the inhospitable Pamir and over such passes.

इसका सारांश यह है कि यह हर्ष की बात है कि मुझे यहां चीनी लेखकों की सत्यता प्रमाणित करने का अच्छा अवसर प्राप्त हुआ। मध्य एशिया के इतिहास और भूगोल के विषय मे वे ही हमारे अगुआ और पथदर्शक हैं। मुझे यहां उन कारणो को अच्छी तरह लिखने का अवकाश नही है कि क्यो सन् ७४९ ई० मे चीनी सेना कासगर से पामीर होती हुई यासीन और गिलगिट आई। यासीन और गिलगिट उस समय तिब्बत के अधिकार मे थे। चीनियों की सेना 'बरोगिल' और 'दरकोट' के दर्रों को पार कर आई थी। मैं चीनियों की इस बड़ी सेना के आने के मार्ग को जानने का बड़ा उत्सुक था। इस सेना ने पामीर और हिंदुकुश के प्राकृतिक अवरोधों को पार किया था। 'दरकोट' दर्रा समुद्र की सतह से १५४०० फुट ऊँचा है। मैं १७ मई को वहां पहुँचा। मीलों तक बर्फ की नदी चमक रही थी।

उसका चढ़ाव उत्तर से बड़े बड़े बर्फ के ढोकों से ढँका था। मैं बड़ी कठिनाई से पुलपुली बर्फ पर से होकर ऊपर गया। ९ घटे लगे। मेरे पथदर्शकों ने इसे पार करना असंभव बताया था। मैंने जब इन चमकती हुई बर्फों के ऊपर से नीचे देखा तो यासीन की घाटी ७००० फुट की गहराई मे देख पड़ी। खेद है कि कोरिया के उस वीर सेनापति का यहां कोई स्मारक चिह्न नहीं है जो अपने कौशल से सहस्रो मनुष्यों की सेना लिए यहां पहुँचा था। इससे यह पता चलता है कि उद्यान के इधर उधर दुष्पार पर्वत के दर्रे और घाटियाँ थीं। ऐसी ही और घाटी रही होगी जिस पर से उस समय दरद देश से उद्यान आने के लिये झूले का पुल बना रहा हो। पर इतने मात्र से उसे सिधुनद मानना ठीक नहीं प्रतीत होता। यह भी सभव है कि कोई और नदी हो जो दो पर्वतो के मध्य होकर उद्यान और दरद के बीच बहती हो और उसके दोनो ओर दो ऊँचे पर्वत रहे हो। इसकी सत्यता दोनो यात्रियों के विवरणो से प्रमाणित होती है। भरतजी को उद्यान पहुँचने मे भागीरथी नामक नदी उतरनी पड़ी थी जिसे महाकवि ने "दुष्प्रतरा" लिखा है। वह नदी अंशुधान पर्वत के समीप थी। यहां डा० ओर्फेंक का मत भी विचारणीय है। वे लिखते हैं कि हियनतू शब्द का अर्थ रस्सी का झूला है। इस यात्रा मे 'हियन' और 'तू' नामक दोनों संकेत दो बार आए हैं। एक पर्व ७ मे और दूसरे पर्व १४ मे। पर्व १५ मे 'तू' शब्द अकेला आता है और यहाँ नदीवाचक है। इसके अतिरिक्त और

भी कई जगह यह शब्द नदी-वाचक आया है। अतः हियन का अर्थ सिवाय झूला या पुल के और दूसरा नहीं प्रतीत होता है। सिंधुनद के लिये वे ही संकेत प्रयुक्त हो सकते हैं जो हिंदुस्तान के लिये आए हों। शब्द के उच्चारण-साम्य से यह भ्रम अनुवादकों को हुआ होगा।

यहां नदी पार कर इस पार आने पर अनेक भिक्षु मिले और उन लोगों ने फाहियान से प्रश्न किया कि बतलाओ बौद्ध धर्म कैसे यहां से पूर्व की ओर गया। इस पर फाहियान ने उत्तर दिया कि "हमने उस ओरवालों से पूछा था। वे कहते थे कि बाप-दादों से सुनते आते हैं कि मैत्रेय बोधिसत्व की मूर्ति स्थापन कर हिंदुस्तान के भिक्षु सूत्र और नियम लेकर नदी पार गए। मूर्ति की स्थापना बुद्धदेव के परिनिर्वाण-काल से ३०० वर्ष पीछे हुई। उस समय हान देश मे चाउ वंशी महाराज पिंग का राज्य था। इस वाक्य से प्रमाणित है कि हमारे धर्म का प्रचार इस मूर्ति के स्थापन से प्रारभ हुआ है। भगवान मैत्रेय धर्मराज हैं। उसी शाक्य-वंशावतस ने त्रिरत्न की घोषणा की है और यहां आकर पार के लोगो को धर्मोपदेश किया है।"

फाहियान उद्यान जनपद पहुँचा। यह उद्यान जनपद उर्द्ध-सुआत के दून मे था। वहां उस समय अनेक संघाराम थे जिनमे बहुतों का पता डा० स्टीन साहेब ने सन् १८९८ मे चलाया। डा० स्टीन साहेब ने मंगाली के पास एक बडे नगर का खंडहर भी खुदवाया था और उनका अनुमान क्या दृढ़ विश्वास है कि

उद्यान की प्राचीन राजधानी यही थी। यहां के रहनेवालों से मालूम हुआ कि यहां बुद्धदेव का पदचिह्न है, यहां एक चट्टान भी थी, जिस पर बुद्धदेव ने यहां आकर अपने कपड़े सुखलाए थे।

यहां फाहियान के साथ ह्वेकिंग, ह्वेता और तावचांग तो नगार जनपद में बुद्धदेव की छाया का दर्शन करने चले गए पर फाहियान और शेष लोगों ने यहां ठहर कर वर्षावास किया। वर्षा बीत जाने पर फाहियानादि दक्षिण की ओर उतर कर सूहोतो में आए।

सूहोतो प्रदेश का नाम पुराणों में शिवि दिया गया है। फाहियान ने इस जनपद के विषय में एक जातक की कथा का वर्णन किया है। वह राजा शिवि की कथा से जो पुराणों में मिलती है अक्षरशः मिलती जुलती है। भेद केवल इतना मात्र है कि फाहियान ने शक्र को ही परीक्षा करनेवाला लिखा है पर पुराणों में शक्र और अग्नि को परीक्षक लिखा है। उनमें शक्र, श्येन और अग्नि कपोत का रूप धारण कर के आए थे। शेष ज्यों का त्यों है।

यह 'सूहोतो' प्रदेश वही है जहां आज कल बुनेर है। वहां पर उस समय एक स्तूप था जिसपर सोने चांदी के पत्र चढ़े थे। बौद्ध धर्म का भी अच्छा प्रचार था। उस स्तूप का खंडहर अब तक गिरारै में है।

यहां से फाहियानादि सूहोतो से पूर्व ओर १ दिन चले और गांधार जनपद में गए। इस जनपद के विषय में केवल एक जातक की कथा का उल्लेख किया गया है जिसमें बुद्धदेव के एक

जन्म मे किसीको आँख देने की कथा है। उस जगह उस समय एक स्तूप था और वहां के लोग हीनयानानुयायी थे। स्तूप के खँडहर का पता अब तक नहीं चला है।

गांधार से चलकर फाहियानादि पूर्व ओर ७ दिन चल कर तक्षशिला पहुँचे। तक्षशिला को बौद्ध लोग तक्षशिरा कहते हैं। फाहियान ने तक्षशिरा के यह नाम पड़ने का यह कारण दिया है कि बुद्धदेव ने अपने एक जन्म मे अपना शिर एक मनुष्य को दान कर दिया था। यहां एक स्तूप था। वहां से दो दिन पूर्व की ओर चलकर उसे एक और स्तूप मिला जहां बुद्धदेव ने किसी जन्म मे अपना शरीर भूखी बाघिन को खिलाया था।

फाहियानादि फिर वहां से दक्षिण ओर चले और चौथे दिन पुरुषपुर जिसे आज कल पेशावर कहते हैं पहुँचे। यहां पर फाहियान को मालूम हुआ कि बुद्धदेव ने यहां पधार कर अपने शिष्य आनद से कनिष्क के विषय मे भविष्य वाणी की थी। यहां कनिष्क का बनवाया हुआ एक विशाल स्तूप था जिस पर सोने चादी के पत्र चढे थे। यहां बुद्धदेव का एक भिक्षापात्र भी था जिसकी पूजा होती थी। यहां के लोगों से उसने सुना कि 'यूशो' नामक राजा उस पात्र को उठा ले जाना चाहता था पर जब अनेक प्रयत्न करने पर भी उसे न ले जा सका तो विवश हो उसने वहां एक स्तूप और संघाराम बनवा दिया और उनके व्यय के लिये प्रबध कर दिया। पावयुन और सांगाकंग भिक्षापात्र की पूजा कर चीन देश लौटने के विचार मे

थे कि ह्वेता भी जो ह्वेकिंग और तावचिंग के साथ उद्यान से हो नगार को बुद्धदेव की छाया के दर्शन के लिये गया था लौटकर पहुँचा। उसने कहा वहां ह्वेकिंग बीमार पड़ गया था और जब उसकी दशा सुधरती न देख पड़ी तो तावचिंग को उसकी सेवा के लिये छोड़ कर ह्वेता यहां लौट आया। पेशावर पहुँचने पर फाहियान आदि से मिलकर पावयुन और सांगकिंग तो ह्वेता के साथ चीन देश को लौट गए और फाहियान अकेला नगार की ओर चला।

नगार प्रदेश पुरुषपुर के पश्चिम पड़ता था। यात्री पुरुषपुर से १६ योजन चलकर वहां के नगर हेलो मे पहुँचा। हेलो आज कल हिद्दा कहलाता है और काबुल देश की सीमा के अंतर्गत जलालाबाद से दक्षिण ५ मील पर है। यहां बुद्धदेव के कपाल की एक हड्डी थी। वह एक सुंदर विहार में थी और नित्य उसकी पूजा बड़े विधान से होती थी। यहां कोई छोटा राजा भी था और एक बड़ा विहार भी था। उसके उत्तर एक योजन पर नगार की राजधानी थी। कहते हैं कि बुद्धदेव ने यहां पूर्व जन्म मे, जब दीपंकर बुद्ध थे, तीन डलियां फूलों की मोल लेकर उन्हे चढ़ाई थीं। वहीं बुद्धदेव का एक दाँत भी था। नगर के उत्तर-पूर्व एक योजन पर एक दून पड़ता था। इसके मुहाने पर बुद्धदेव का दंड और भीतर उनकी संघाती थी, तथा नगर के दक्षिण आध योजन पर एक गुफा मे बुद्धदेव की छाया थी। फाहियान ने लिखा है कि "दस पग से

अधिक दूर जाकर देखने से इसका साक्षात् दर्शन होता है। पर ज्यो ज्यो पास जाओ यह स्वप्नवत् विलीन हो जाती हैं।" इसीके पास ही उसे एक बृहत् स्तूप और विहार भी मिले थे। उस स्तूप को उसने बुद्धदेव का रचा हुआ लिखा है।

नगार देश मे फाहियान जाड़े की ऋतु के तीसरे महीने तक रहा। फिर फाहियान, ह्वेकिंग और तावच्चिंग साथ साथ श्वेत पर्वत या सफेद कोह पर चढे। वहां पहाड़ पर चढ़ते समय इतनी ठढी और तीक्ष्ण वायु चली कि सब के सब ठिठुर गए। ह्वेकिंग बेचारा पहले ही से रोगग्रस्त था। वह बेकाम हो गया और गिर पड़ा। उसके मुँह से फेचकुर बहने लगा और वह मर गया। फाहियान और तावच्चिग बड़ी कठिनाई से सफेद कोह पार कर 'लोए' जनपद मे गए।

'लोए' प्रदेश सफेद कोह के दक्षिण मूल ही मे था। वहां उस समय फाहियान वर्षा ऋतु भर रह गया। 'लोए' प्रदेश मे महायान और हीनयान दोनों के अनुयायी भिक्षु थे। वर्षावास बिताकर फाहियान और तावच्चिंग १० दिन तक दक्षिण ओर चलकर 'योना' में जिसे अब बन्नू कहते हैं आए। यहां से फिर ३ दिन चलकर सिंधु नद के पास पहुँचकर उसे पुल पर उतरकर पार हुए।

पूर्व काल मे उद्यान से लेकर सब जनपद गाधार देश के अधीन थे। फाहियान ने स्वयं आगे ३९ पर्व मे भारतीय पंडित के

व्याख्यान का उल्लेख करते हुए लिखा है कि "बुद्धदेव का भिक्षापात्र पहले वैशाली में था अब गांधार मे है", यद्यपि उसने अपने यात्रा-विवरण पर्व १२ मे लिखा है कि "बुद्धदेव का भिक्षापात्र भी इस पुरुषपुर जनपद में है।" इससे भी स्पष्ट है कि ये सब जनपद गांधार के अधीन थे अथवा गांधाराधिप के राजपुरुष उनका शासन करते थे। पुरुषपुर उसकी प्रधान राजधानी थी।

सिंधु पार हो फाहियान और तावचिंग पीतू जनपद मे आए। इस जनपद के भिक्षु उन्हे बाहरी देख बड़े अचंभे में आए और जब उन्हें उनसे पूछने पर यह ज्ञात हुआ कि वे चीन देश के रहने-वाले हैं और इतनी दूर धर्म और धर्मग्रंथों को ढूंढते हुए आए हैं तो उन लोगों ने बड़े आश्चर्य से उनके साहस की प्रशंसा की और उनसे बड़ी सहानुभूति प्रगट की।

यह प्रदेश उस समय सिंधु नदी के इस पार जमुना के किनारे तक विस्तृत समझा जाता था। इस जनपद से होते हुए यात्री दक्षिण-पश्चिम की ओर बढ़े। राह मे उन्हे अनेक संघाराम मिले जिनमें लाखों भिक्षु थे। इनमे से होते हुए वे मथुरा मे पहुँचे। कितने दिनों मे पहुँचे इसका कुछ भी पता हमारे यात्री के यात्रा-विवरण से नहीं चलता। मथुरा मे आकर वे ठहरे या नहीं इसका भी कुछ उल्लेख यात्रा में नहीं है और न कुछ मथुरा का हाल ही लिखा है, हाँ इतना मात्र अवश्य मिलता है कि "यहां से दक्षिण-पूर्व दिशा में ८० योजन चले। एक जनपद मे पहुँचे। जनपद का नाम मथुरा है। पुना (यमुना) नदी

के किनारे किनारे चले। दहिने बाये २० विहार थे जिनमे तीन सहस्र से अधिक भिक्षु थे। बौद्ध धर्म का अच्छा प्रचार अब तक है।" यात्रा-विवरण मे एक और वाक्य है जिससे यह परिणाम निकलता है कि गोबी की मरुभूमि से इधर के देश या तो भारतवर्ष के अंतर्गत समझे जाते थे अथवा बौद्ध धर्म का प्रचार और भारतीय आचार विचार देख हमारे यात्री ने उन्हे भारतवर्ष के देश लिख डाला है। वह वाक्य यह है "मरुभूमि से पश्चिम हिंदुस्तान के सभी जनपदों मे जनपदों के अधिपति बौद्ध-धर्मानुयायी मिले।"

फाहियान ने इस (मथुरा) से दक्षिण के देश को मध्य देश लिखा है। उसने वहाँ की प्रजा को बड़ा ही शुद्धाचारी और धर्मनिष्ठ लिखा है। फाहियान के शब्द ये हैं—

"प्रजा प्रभूत और सुखी है। व्यवहार की लिखा पढ़ी और पंचायत कुछ नही है। वे राजा की भूमि जोतते हैं और उसका अंश देते हैं। जहां चाहे जायँ, जहां चाहे रहे। राजा न प्राण-दंड देता है, न शारीरिक दड देता है। अपराधी को अवस्थानुसार उत्तम साहस वा मध्यम साहस का अर्थदड दिया जाता है। वार वार दस्यु कर्म करने पर दक्षिण करच्छेद किया जाता है। राजा के प्रतिहार और सहचर वेतनभोगी होते हैं। सारे देश मे सिवाय चांडाल के कोई अधिवासी न जीवहिंसा करता है, न मद्य पीता है और न लहसुन प्याज खाता है। दस्यु को चाडाल कहते हैं। वे नगर के बाहर रहते हैं और नगर मे जब

पैठते हैं तो सूचना के लिये लकड़ी बजाते चलते हैं, कि लोग जान जायँ और बचाकर चलें, कहीं उनसे छू न जायँ। जनपद मे सूअर और मुर्गी नहीं पालते, न जीवित पशु बेचते हैं, न कहीं सूनागार और मद्य की दूकानें हैं। क्रय विक्रय मे कौड़ियों का व्यवहार है। केवल चांडाल मछली मारते, मृगया करते और मास बेचते हैं।"

अहा! कैसा धर्मराज्य था। मानों कवि वाल्मीकि ने अयोध्या की प्रजा की जो प्रतिकृति खींची थी वह साक्षात् हमारे यात्रियों ने अपनी आँखों से देखी। भला हम कलियुगी मनुष्यों का भाग्य कहाँ जो ऐसे धर्म्मराज्य के समय मे जनमते। अयोध्या की प्रजा का जो वर्णन वाल्मीकिजी ने किया है उसके कुछ अंश नीचे देते हैं। सहृदय पाठक उसे फाहियान के वर्णन से मिला कर देखे—

तस्मिन्पुरवरं हृष्टा धर्मात्मानो बहुश्रुताः।
नरास्तुष्टा धनैः स्वैः स्वैरलुब्धाः सत्यवादिनः॥
नाल्पसन्निचयः कश्चिदासीत्तस्मिन्पुरोत्तमे।
कुटुंबी योह्यसिद्धार्थो गवाश्वधनधान्यवान्॥
कामी वा न कदर्यो वा नृशंसः पुरुषः क्वचित्।
द्रष्टुं शक्यमयोध्यायां नाविद्वान्न च नास्तिकः॥
सर्वे नराश्च नार्यश्च धर्मशीलाः सुसंयताः।
मुदिता शीलवृत्ताभ्यां महर्षय इवामलाः॥

।

नानाहिताग्निर्नायज्वा न क्षुद्रा वा न तस्करः ।
कश्चिदासीदयोध्यायां न चावृत्तो न संकरः ॥
स्वकर्मनिरता नित्यं ब्राह्मणा विजितेन्द्रिया. ।
दानाध्ययनशीलाश्च संयताश्च प्रतिग्रहे ॥
नास्तिको नानृती वापि न कश्चिदबहुश्रुत. ।
नासूयको न चाशक्तो नाविद्वान्विद्यते कचित् ॥
न दीनः क्षिप्तचित्तो वा व्यथितो वापि कश्चन ।
कश्चिन्नरो वा नारी वा नाश्रीमान्नाप्यरूपवान् ॥
द्रष्टुं शक्यमयोध्यायां नापि राजन्यभक्तिमान् ।
दीर्घायुषो नराः सर्वे धर्मं सत्यं च संश्रिता ॥
सहिताः पुत्रपौत्रैश्च नित्यं स्त्रीभिः पुरोत्तमे ।
क्षत्रं ब्रह्ममुख चासीद्वैश्या' क्षत्रमनुव्रताः ॥
शूद्राः स्वकर्मनिरतास्त्रीन्वर्णानुपचारिणः ।

ऐसे देश से होकरम थुरा से १८ योजन दक्षिण-पूर्व चलकर वे संकाश्य नगर मे पहुँचे। संकाश्य नगर फर्रुखाबाद के जिले मे शमसाबाद के पर्गने मे है। इसे अब संकसिया कहते हैं। यहां अब तक अनेक विहारों और स्तूपों के चिह्न मिलते हैं। यहां दो अशोक स्तंभो के भी चिह्न हैं जिनमे एक पर हाथी की मूर्ति थी। वह मूर्ति वहां मिली भी थी।

कहते हैं कि बुद्धदेव जब इस लोक से त्रयस्त्रिंशधाम में अपनी माता को जो उस स्वर्ग में देवयोनि मे जनमी थी अभिधर्म का उपदेश करने गए थे और वहां वर्षावास कर तदनंतर इस लोक मे

अवतीर्ण हुए थे तो वहां से यही उतरे थे। जिस स्थान पर उतरे थे वहां सीढ़ियां बनी थी जिस पर महाराज अशोक के बनवाए विहार और स्तंभ थे। वहां एक तीर्थ भी था जहां बुद्धदेव ने स्नान किया था। उनके चंक्रमणस्थान पर तथा जहां केशनखादि कर्तन किए थे और वैठे थे स्तूप थे। फाहियान ने इस स्थान के संबंध में एक और स्थान का उल्लेखइ न शव्दो मे किया है कि "यहां से पश्चिमोत्तर पचास योजन पर एक विहार है जिसे 'आड़वक' कहते हैं। 'आड़वक' नामक एक दुष्ट यक्ष था। बुद्धदेव ने उसे धर्मोपदेश किया था। पीछे लोगो ने उस स्थान पर विहार वनवाया था। जव एक अर्हत को इस विहार को दान देने के लिये उसके हाथ पर जल छोड़ने लगे तो जल की कुछ बूँदें गिरी थां। पृथ्वी पर उस जगह वे अव तक पड़ी हैं, कितनी ही पोछी जाती हैं पर मिटती नहीं। ये बाते फाहियान ने लांगो से सुनकर लिखी हैं। वास्तव मे वह उस स्थान पर गया नहीं था। वहीं एक नाग का विहार भी था।

फाहियान इसी 'नाग' विहार मे रहा था। नागविहार संकाश्य नगर मे उसी स्थान में आस पास था जहां बुद्धदेव त्रयस्त्रिंशधाम से शक्र और ब्रह्मा के साथ अवतीर्ण हुए थे। नागविहार के संवंध मे फाहियान ने लिखा है कि "इस स्थान के पास एक श्वेतकर्ण नाग है। वही भिक्षुओं का दानपति है। जनपद मे उसीसे पुष्कल अन्न होता है, यथासमय वृष्टि होती है और ईतियां नहीं पड़ती। इसके प्रत्युपकार मे भिक्षुओं ने नाग

के लिये विहार बना दिया है, उसके बैठने के लिये आसन कल्पित है, भोग लगता है और पूजा होती है। भिक्षुसंघ से नित्य तीन जन नागविहार मे जाते हैं और भोजन करते हैं। वर्षा बीतने पर नागराज कलेवर बदलता है। एक छोटा सा सँपोला बन जाता है जिसके कानों के पास सफेद बुंदकियां होती हैं। भिक्षुसंघ उसे पहचानते हैं। ताँबे के कलश मे दूध भरते हैं और नाग को उसमे डाल सब ऊँच नीच के पास ले जाते हैं। यह कृत्य अकथनीय होता है। ऐसी यात्रा वर्ष मे एक बार होती है।" यह अद्भुत बात कुछ बुद्ध की छाया से कम आश्चर्यजनक नहीं है। कुछ हो उस समय लोग नितांत सीधे थे और सुगमता से बातों का विश्वास कर लेते थे। विदेशियो के यात्रा-विवरणो मे ऐसी बातो की कमी नहीं। स्वय टवरनियर और बर्नियर की यात्राओं को जिन लोगो ने देखा है वे इसे अच्छी प्रकार जानते हैं। पडे पुरोहितों और पुजारियों का यह साधारण हथकंडा है कि वे अपने यात्रियों से ऐसी रोचक और भयानक कथाएँ प्रायः कहा करते हैं, जिससे वे उनके श्रद्धालु भक्त हो जावे। एक बार की बात है कि मैं अपने एक मित्र के साथ काशी मे करवट का दर्शन करने गया। मार्ग से ही दो तीन काशी के छोकरों ने पीछा किया और वे उन्हें उस स्थान पर ले गए। मेरे मित्र थे बड़े श्रद्धालु पर साथ ही कुछ कृपण भी थे। वहां पहुँचकर और दर्शन कर उन्होने दो पैसा चढ़ाया। इसी बीच मे एक और मनुष्य ने जो प्राय उन्हींका कोई

सिद्धसाधक था पद्रह रुपए लाकर उस स्थान के पुजारी के पॉव पर रख दिए और कहा कि महाराज मेरे मनोरथ सफल हो गए. यह मेरी पूजा है, स्वीकार कीजिए। पंडाजी ने झट अपने पास से चार पैसे निकाल कर दिए और कपूर मँगाया। कपूर को जलाकर एक गहरे कूप मे छोड़ दिया। फिर हम लोगो को दर्शन करा कर कहा कि यहां चढ़ाने और प्रार्थना करने से मनोरथ सफल होते हैं। यह कह वे रुपए उन्होने उसी कूप मे छोड़ दिए। अब तो मेरे मित्र से न रहा गया, वे एक अठन्नी निकाल कर डालने लगे। पंडा जी ने कहा भाई जैसा मनोरथ हो वैसा ही अपने वित्त के अनुकूल भीतर चढ़ाना। फिर तो मेरे मित्र ने अठन्नी अपनी गोट में रख ली और दो रुपए निकाल कर कूएँ के भीतर डालकर पंडा जी का पॉव पकड़ा और चले आए। मैं भी उनके साथ बैठा सारा दृश्य देखता रहा। यही दशा अन्य तीर्थ-स्थानो की भी है। जब आज कल धूर्त पंडों की इतनी चल जाती है तो प्राचीन काल मे और विशेषकर विदेशियां से उनकी कितनी चलती थी यह लोग समझ सकते हैं।

यहां फाहियान और उसका साथी तावचिंग नागविहार मे रहे और यहाँ उन्होने वर्षा व्यतीत की। फिर यहां से दक्षिण-पूर्व दिशा मे ७ योजन चलकर वे कान्यकुब्ज मे पहुँचे। कान्यकुब्ज नगर गंगा के किनारे था। वहां उस समय दो संघाराम थे जिन मे हीनयानानुयायी भिक्षु रहते थे। यहां पर बुद्धदेव ने नगर से पश्चिम छ सात ली पर अपने शिष्यों को संसार की असा-

रता का उपदेश दिया था। वहां स्तूप बना था। फाहियान और तावचांग वहां से गंगा उतर कर दक्षिण तीन योजन पर आले नामक ग्राम मे पहुँचे। यहां पर भी बुद्धदेव के बैठने, चक्रमण करने और उपदेश करने के स्थानों पर स्तूप बने थे।

आले का पता आज तक विद्वानों को नहीं चला है। गंगा के पार करने का उल्लेख यात्रा मे है पर दक्षिण जाने मे गंगा पार करनी नहीं पड़ती। यात्रा-विवरण से यह भी अनुमान होता है कि इस यात्रा-विवरण के लिये फाहियान कोई सूची वा नोट अपने यात्राकाल मे साथ साथ नहीं लिखता गया था, नहीं तो इतनी भूल न होती। केवल स्मरण से उसने लिखा है वा दूसरे को बतलाया था जिसने इन विवरणों को लिखा।

आले से दक्षिण पूर्व दिशा मे ३ योजन पर साकेत पड़ा। यहां बुद्धदेव ने दतुवन कर उसे भूमि मे गाड़ दिया था। वह वहा लग गई थी। वहां पर संभव है कि फाहियान ने यह कथा भिक्षुओं से सुनी हो। वहां पर फाहियान ने चारों बुद्धो के बैठने के स्थान पर स्तूप भी देखे थे जो उस समय वर्तमान थे। साकेत संस्कृत ग्रथों मे अयोध्या पुरी का नाम है। पर यदि फाहियान की बात ठीक मानी जाय तो यही क्या अन्य स्थानों का भी दिशा से पता लगाना कठिन हो जाय। दतुवन की बात जो इसमे लिखी है वह अयोध्या के दतुवन-कुंड के विषय मे प्रचलित दंतकथा से बहुत मिलती है। अंतर केवल यही है कि लोग बुद्धदेव की जगह रामचंद्र की दतुवन के साथ इस कथा

का वर्णन करते हैं। सुएन-च्वांग के यात्रा-विवरण मे ऐसी ही कथा विशाखा नामक स्थान के विषय मे मिलती है। विशाखा और शाखें मिलते जुलते शब्द भी हैं।

साकेत से दक्षिण आठ योजन चलकर दोनों यात्री श्रावस्ती पहुँचे। श्रावस्ती उस समय उजाड़ पड़ी थी, केवल २०० के लगभग वहां घर आवाद थे। वहां अनेक स्तूप और विहार मिले। प्रसिद्ध जेतवन विहार के खंडहरों को यात्रियों ने देखा और वे अनेक भिक्षुओं से मिले जिनसे उन्हें मालूम हुआ कि कभी उस जेतवन विहार के आस पास ९८ विहार थे। यहां पर फाहियान ने बुद्धदेव के ९६ पाखंड के आचार्यों के साथ शास्त्रार्थ और धर्म्म-चर्चा की कथा लिखी है। उन पाखंडों के विषय मे फाहियान लिखता है कि "मध्य देश में ९६ पाखंडों का प्रचार है। सब लोक और परलोक को मानते हैं। उनके साधुसंघ हैं, वे भिक्षा करते हैं, केवल भिक्षापात्र नहीं रखते। सब नाना रूप से धर्मा-नुष्ठान करते हैं। मार्गों पर धर्मशालाएँ स्थापित हैं। वहां आए गए को आवास, खाट, विस्तर, खाना पीना मिलता है। यती भी यहां आते जाते हैं और वास करते हैं। सुनते हैं कि केवल काल में कुछ अंतर है।"

छानवे पाखंड कौन थे इसका स्पष्ट पता नहीं चलता। पाखंड शब्द का प्रयोग धार्मिक संप्रदाय के अर्थ में कौटिल्य के अर्थशास्त्र और अशोक के शिलालेख तक मे है। ९६ पाखंडों की

चर्चा इस देश मे बहुत दिनों से चली आती है। सुदरदासजी ने सर्वांगयोग ग्रथ मे लिखा है—

इन बिन और उपाय है सो सब मिथ्या जान।
छह दरसन अरु छयान्नवे पाखड कहूं बखानि ।।
केचित कर्म स्थापहिं जैना।
कोश लुचाइ करहिं अति फैना ।।
केचित मुद्रा पहिरैं कानं।
कापालिका भ्रष्ट मत जानं ।।
केचित नास्तिक वाद प्रचंडा।
तेतौ करहि बहुत पाखंडा ।।
केचित देवी शक्ति मनावैं।
जीव हनन करि ताहि चढ़ावैं ।।
केचित मलिन मंत्र आराधैं।
वसीकरन उच्चाटन साधैं ।।
केचित मुये मसान जगावैं।
थंभन मोहन अधिक चलावैं ।।
केचित तर्कह शास्तर पाठी।
कौशल विद्या पकरहिं काठी ।।
केचित वाद विविध मत जानैं।
पढि व्याकरण चातुरी ठानैं ।।
केचित कर धरि भिक्षा पावैं।
हाथ पोंछि जंगल को धावैं ।।

केचित घर घर मांगहि टूका।

बासी कूसी रूखा सूका॥

केचित धोवन धावन पीवैं।

रहैं मलीन कहौ क्यों जीवैं॥

केचित मता अघोरी लीया।

अंगीकृत दोऊ का कीया॥

केचित अभष भषत न सँकाहीं।

मदिरा मांत मास पुनि खाहीं॥

केचित वपुरे दूधाहारी।

पांड पोपरा दाख छोहारी॥

केचित कर्कट बीनहिं पंथा।

निर्गुन रूप देखावहिं कंथा॥

केचित मृग छाला बाघंवर।

करते फिरहिं बहुत आडंवर॥

केचित मेघाडंवर बैठें।

शीतकाल जलमाईं पैठें॥

केचित धूम्र पान करि भूले।

औंधे होइ वृच्छ सां झूले॥

इसी प्रकार ब्रह्मजाल सूत्र में अनेक दार्शनिकों के सिद्धात और आचार विचारों आदि का उल्लेख मिलता है। यहाँ पर भी साधुओं को फाहियान और तावचांग को देख बड़ा आश्चर्य हुआ और जब उन्हें पूछने पर मालूम हुआ कि वे चीन

देश से आए हैं तो उनके आश्चर्य्य की सीमा न रह गई। यहां पर छायागत मदिर का उल्लेख जो फाहियान ने किया है वह भी सुन सुना कर ही किया होगा। देवदत्त के भूमि मे समा जाने की कथा भी कुछ कम आश्चर्य्यजनक नहीं है।

श्रावस्ती का खंडहर अब तक गोंडा जिले मे बलरामपुर के पास गोंडा और बहराइच की सीमा पर है। उसकी अनेक बार खुदाई भी हो चुकी है और उस पर विसेंट स्मिथ साहब की आशंका बनी रही, फिर भी यह निश्चय है कि श्रावस्ती वही है। प्रति-वर्ष ब्रह्मा, लंका आदि के यात्री यहां दर्शन करने आते हैं। यहां जैनियों का भी तीर्थस्थान है। यात्री जाकर बलरामपुर के स्टेशन पर उतरते हैं। वहा से पैदल वा एक्का करके श्रावस्ती जाते हैं।

श्रावस्ती के पास ही पश्चिम दिशा मे फाहियान और तावचांग को ५० ली पर तूवेद नामक ग्राम मिला। वहां कश्यप बुद्ध की अस्थि पर स्तूप मिला। फाहियान ने इसे कश्यप बुद्ध का जन्मस्थान लिखा है। इस स्थान को अब टडवा कहते हैं। वहां से यात्री श्रावस्ती लौट आए और फिर श्रावस्ती से दक्षिण-पूर्व दिशा मे चले। १२ योजन जाने पर उन्हे 'नेपी-किया' मिला। यहां ककुच्छंद बुद्ध का जन्म हुआ था। इस स्थान का नाम बौद्ध ग्रंथो मे नाभिक और क्षेमावती लिखा है। यहां भी उन्हे उनके परिनिर्वाण का स्तूप मिला। नाभिक का खडहर अब तक नेपाल की तराई मे मिलता है। वहां से उत्तर एक योजन से कम चलकर कनक-मुनि का जन्मस्थान मिला। वहां भी स्तूप मिले। इसके भी खंडहर

तराई मे वर्तमान हैं। फाहियान ने इस गांव का नाम नहीं लिखा है। उस समय ये तीनों स्थान जहां प्राचीन तीनों बुद्धो का जन्म-स्थान बतलाया जाता है उजाड़ पड़े थे और स्तूप भी गिरे पड़े थे। फाहियान ने केवल इतना मात्र लिखा है कि "स्तूप बने हैं।" अन्यथा यदि स्तूप अच्छी दशा मे होते तो वह लिखता कि "स्तूप अब तक पूर्ववत् हैं।"

कनक-मुनि का जन्म-स्थान नेपाल की तराई मे है। वहा अशोक का बनवाया एक स्तंभ भी था पर उसका उल्लेख फाहियान ने कुछ भी नहीं किया है। उसका खंडहर फुहरर साहेब को निगलि-हवा के पास मिला था जिसका चित्र और विवरण उन्होंने अपनी रिपोर्ट में जो (Monograph on Budha Sakya Muni's birth-place in Nepal Tarai) १८९७ सन् में छपी है किया है। भूल केवल इतनी मात्र है कि श्रावस्ती से ये स्थान उत्तर-पूर्व है दक्षिण-पूर्व नहीं।

वहां से पूर्व एक योजन से कम पर कपिलवस्तु नगर का खंड-हर हमारे यात्रियों को मिला। वहां उस समय बिलकुल उजाड़ था। वहां केवल कुछ श्रमण रहते थे और दस घर अधिवासियों के थे। वहां साधुओं ने उन्हे अनेक स्थान दिखलाए और उनके विषय में अनेक बातें कहीं, जैसे यहां महामाया के गर्भ मे भगवान सफेद हाथी पर आए, यहां असित ने उनके लक्षण देखे, यहां उनके खेत थे, इत्यादि इत्यादि। कपिलवस्तु के पूर्व ५० ली पर उन्हे लुंबिनी वन मिला। यहां बुद्धदेव का जन्मस्थान था। वह

स्थान भाउस समय उजाड पड़ा था। उसके भिन्न भिन्न स्थानों के विषय मे फाहियान ने जो कुछ सुना उसका उल्लेख अपनी यात्रा मे किया है। लुंबिनी वन अब उजाड़ पड़ा है। वह नेपाल की तराई मे भगवानपुर के उत्तर है। वहां अशोक का एक स्तंभ भी है जिस पर एक लेख है। फाहियान ने लिखा है कि "कपिलवस्तु जनपद महाजन-शून्य है। अधिवासी बहुत कम हैं। मार्ग मे श्वेत हस्ती और सिंह से बचने की आवश्यकता है। विना सावधानी के जाने योग्य नहीं।" हम नहीं समझते कि सफेद हाथी की बात यात्री ने कहां से लिखी। हाथी और सिह तो हो सकते थे। अब से सौ दो सौ वर्ष पहले भी हाथी वहा मिलते थे और जगल भी थे पर सफेद हाथी इस देश मे नहीं होते। संभव है कि मिट्टी मे लपटे हाथियों के झुड को देखकर फाहियान ने उन्हे सफेद हाथी समझ लिया हो।

लुंविनी के स्थान का पता आजकल के विद्वानो को चल गया है। वह नेपाल की तराई मे अब तक भगवानपुर के पास है। वहां अशोक का एक टूटा हुआ स्तंभ भी खड़ा है और उस पर के लेख से यह प्रमाणित भी हो चुका है। यदि बौद्धो के ग्रथो को प्रमाणभूत माना जाय तो कपिलवस्तु का जनपद वाणगंगा और रापती के मध्य मे था। वाणगंगा नेपाल की तराई से निकलकर गोरखपुर के पास रापती से मिली है। अभी थोड़े दिन की वात है कि वस्ती जिले मे पिपरहवा के पास एक पुराना स्तूप था और उसकी खुदाई पीपी साहेब ने जो वहां के जिमीदार हैं कराई थी।

उसमे से एक डिब्बी के भीतर बुद्धदेव का धातु मिला था। उस पर के लेख से यह प्रमाणित होता था कि वह स्तूप शाक्यों ने बुद्ध-देव के उस धातु पर बनाया था जो उन्हे मल्लराज के कुशनगर मे बुद्धदेव की चिता के भस्म का अंश स्वरूप मिला था। यह स्तूप कपिलवस्तु जनपद के मध्य बनवाया गया था। यद्यपि यह कथा अति प्रसिद्ध है कि अशोक ने आठों स्तूपो को तुड़वाकर भारतवर्ष भर मे ८४००० स्तूप बनवाने चाहे थे और सात स्तूपों को ध्वंस करके रामस्तूप को जो रामग्राम मे था ध्वंस कराना चाहा था, पर किसी कारण वश उसे वह ध्वंस न करा सका और सातों स्तूपों के धातु को लेकर उसने भारतवर्ष मे अनेक स्तूप बन-वाए। इस कथा पर लोगों का विश्वास भी बड़ा है, पर या तो संभव है कि वह यही स्तूप हो जिसे अशोक ने नहीं तुड़वाया था और जिसे यात्रियों ने रामस्तूप लिखा, अथवा यदि वह यह नहीं है, कोई और स्तूप था, तो उसने सात क्या केवल छही स्तूपो को तुड़वाया और जब सातवे स्तूप पर जो रामस्तूप था पहुँचा तो उसे अनेक अड़चने पड़ी और उसने उसे और शाक्यो के दूसरे स्तूप नहीं तुड़वाए। पिपरहवा लुंबिनी से आठ मील पर है।

कपिलवस्तु के लुंबिनी कानन से पूर्व ओर ५ योजन चल कर दोनों यात्री राम नामक जनपद में पहुँचे। यहां के स्तूप के विषय मे फाहियान ने अद्भुत कथा लिखी है कि इस देश के राजा ने बुद्धदेव के धातु के अंश पर जो स्तूप बनवाया था वह

एक झील के किनारे था। उस झील मे एक नाग रहता था, वही स्तूप की पूजा अर्चा करता था। अशोक सात स्तूपो का ध्वंस कर इस आठवें स्तूप को खुदाना चाहता था, पर नाग ने जब उसे नागलोक में ले जाकर पूजा की सामग्री देखाई तो वह दंग रह गया और उसने उस स्तूप को नहीं गिरवाया। वहा घना जंगल हो गया था और हाथी अपनी सूंड़ो मे पानी भरकर स्तूप पर चढ़ाते और वहा सफाई करते थे। एक बार कहीं का कोई यात्री स्तूप के दर्शन के लिये आया, राह मे उसे हाथियो का एक झुंड मिला। यात्री देखते ही भय के मारे पेड़ पर चढ़ गया और वहा से देखता रहा। हाथियों ने अपनी सूड मे पानी लाकर स्तूप पर छिडका और फिर फूल तोड़कर लाकर चढाए। हाथियें का यह कृत्य देखकर उसे ग्लानि हुई। वह भिक्षु हो गया और वहा सफाई करके रहने लगा। फिर वहा के राजा से कहके उसने वहा एक मठ बनवाया और आप उस मठ का महंत बना। वहा तब से उस का महत श्रमण हुआ करता है। यह कथा फाहियान ने किसी मठभिक्षु से सुनी, वा वहा के महत से, इसका कुछ उल्लेख नहीं है। हुयेनसांग का कथन है कि इस स्तूप से प्रकाश निकलता था।

इस स्थान का पता अब तक नही लगा है। अधिक संभव है कि वह पिपरहवा का स्तूप हो, पर उसका अंतर केवल आठ मील मात्र है। क्योंकि आज तक वहीं एक स्तूप मिला है जिसमे बुद्ध-

देव का धातु उस समय से अब तक ज्यो का त्यो रखा मिला है। यदि वह नहीं है तो अधिक संभव जान पड़ता है कि यह गोरखपुर के कहीं आस पास मे रहा हो। गोरखपुर के आस पास अनेक ताल भी हैं और स्वयं गोरखपुर के पास हा रामगढ़ का ताल है और पास ही उस नाम का जंगल भी है। अधिक संभव है कि यह स्तूप यहीं कहीं रहा हो पर ध्वस्त हो जाने से अब उसका पता नहीं चलता। अनेक पुराने खंडहर भी वहां मिलते हैं।

रामग्राम से होकर ४ योजन पर फाहियान और तावचांग को वह स्थान पड़ा जहां से सिद्धार्थ ने कपिलवस्तु से गृह त्याग कर जाते समय अपने घोड़े को जिसका नाम कंठक था छेदक के हाथ कपिलवस्तु को लौटाया था। वहां पर एक स्तूप था। इस स्थान का भी पता अब तक नहीं चला है।

वहां से ४ योजन और पूर्व जाकर अंगार स्तूप मिला। यह अंगार स्तूप बौद्ध धर्म के ग्रंथों के अनुसार पिप्पली कानन के मौर्यों का बनवाया स्तूप था। कुशनगर मे बुद्धदेव के धातु का विभाग हो जाने पर मौर्य पहुँचे थे तो द्रोणाचार्य ने उन्हे भस्म के विभक्त हो जाने पर पात्र से चिता के अंगारों (कोयलों) को निकाल कर दे दिया था। उसे लाकर उन लोगो ने स्तूप बनाकर रखा। इस स्तूप का भी पता अब तक नहीं लगा है। संभव है कि अशोक के तुड़ाए हुए सातों स्तूपों की गणना मे यह भी रहा हो। यदि यह ठीक है तब तो रामग्राम और कपिलवस्तु के दो स्तूप बच रहे थे। अंगार स्तूप नवम स्तूप था।

अंगार स्तूप से १२ योजन पूर्व जाकर कुशनगर मिला। यहां बुद्धदेव परिनिर्वाण प्राप्त हुए थे। यहां ही यती सुभद्र को उन्होंने अंत समय मे उपदेश दिया था और वह अर्हत हो गया था। यहां फाहियान को अनेक स्तूप और संघाराम मिले। नगर उस समय उजाड पड़ा था, केवल कुछ तितर बितर श्रमणों के घर थे। इस वाक्य से ध्वनित होता है कि श्रमण गृहस्थ थे।* यह स्थान गोरखपुर मे कसया के पास है। वहां अब भी एक स्तूप है और संघाराम के चिह्न मिलते हैं। पास ही बुद्धदेव की एक बडी लंबी मूर्ति है जो उत्तर को सिर और दक्षिण को पैर किए पडी है। वहां आस पास मे अनेक स्तूपों के ध्वंस के चिह्न और मूर्तिया भी मिलती हैं।

कुशीनार से दक्षिण-पश्चिम १२ योजन चलकर यात्रियों को वह स्थान मिला जहां से बुद्धदेव ने लिछिवी लोगों को कुशनगर की ओर परिनिर्वाण मे आते समय लौटाया था। यहां एक झील थी जिसके विषय मे फाहियान ने लिखा है कि लिछिवी लोगों ने बुद्धदेव के साथ परिनिर्वाण-स्थान पर चलने की इच्छा की और बुद्धदेव ने न माना तो वे बुद्धदेव के साथ चले और नहीं लौटते थे, तब बुद्धदेव ने एक बड़ा ह्रद प्रगट किया जिसे वे पार न कर सके, फिर बुद्धदेव ने अपना भिक्षापात्र चिह्न स्वरूप देकर उन्हे घर लौटाया। इस जगह पर स्तंभ बना है। उस पर यह कथा खुदी है।

---

* नेपाल मे गृहस्थ अब तक श्रमण है। वे बाडव कहलाते है।

इस स्थान का और इस स्तंभ का पता अब तक नही चला है। संभव है कि अशोक ने वहां कोई स्तूप बनवाया हो पर अब उसका पता नहीं है। डा० ह्वे का यह अनुमान है कि यह स्थान सीवान के पास होगा।

लिच्छिवी लोगो के लौटने के स्थान से १० योजन पूर्व चलकर फाहियान और उसका साथी वैशाली राज्य मे पहुँचे। वैशाली नगर के उत्तर एक जंगल मे बुद्धदेव के रहने का विहार था। नगर मे अंबपाली का विहार उसे अच्छी दशा मे मिला। नगर से दक्षिण अंबपाली का आराम और उत्तर-पश्चिम धनुर्बाण-त्याग स्तूप तीन तीन ली पर थे। नगर के पश्चिम जहां बुद्धदेव ने अंतिम समय वैशाली से चलने पर खड़े होकर यह कहा था कि "यह मेरी अंतिम विदा है" पुराना स्तूप था। धनुर्बाण-त्याग स्तूप के पास ही भगवान बुद्धदेव ने आनद से यह कहा था कि मैं तीन महीने बाद परिनिर्वाण प्राप्त होऊंगा। उस स्थान से ४ ली पश्चिम वैशाली की धर्मसंगीति का स्थान था जहां बुद्धदेव के परिनिर्वाण के १०० वर्ष पीछे त्रिपिटक की पुनरावृत्ति की गई थी।

वैशाली नगर का खंडहर अब विहार मे मुजफ्फरपुर के जिले के हाजीपुर विभाग मे वैसर गाँव के निकट है। वहां अब तक अशोक का एक स्तभ भी है। नगर के प्राचीर का चिह्न १५८० फुट लंबा और ७५० फुट के घेरे मे मिलता है।

वैशाली से पूर्व ४ योजन पर पॉच नदियो का संगम पड़ा। यहां आनंद ने परिनिर्वाण लाभ किया था। नदी के मध्य ही

आनंद ने अपने शरीर को योगाग्नि से भस्म किया था। उनके शरीर के भस्म के दो भाग हो गए। एक भाग तो वैशाली के लिछिवी लोगों ने लेकर अपने राज्य मे स्तूप बनवाया और दूसरा भाग मगध के राजा अजातशत्रु ले गए और उस पर अपने राज्य मे उन्होने स्तूप बनवाया। यह स्थान संभवत वही स्थान है जहां सोनपुर है। वहां पर ही गंगा, सोन और गंडक आदि आपस मे मिली हैं।

यहां फाहियान और उसका साथी गंगा पार हुए और एक योजन दक्षिण चलकर पाटलिपुत्र नगर मे पहुँचे। पाटलिपुत्र का नगर पटने के पास था। यहा फाहियान ने अशोक के राजभवन को देखा। वह लिखता है कि "नगर मे अशोक राजा का प्रासाद और सभाभवन हैं। सब असुरो के बनाए हैं। पत्थर चुनकर भीत और द्वार बनाए गए हैं। सुंदर खुदाई और पच्चीकारी है। इस लोक के लोग नहीं बना सकते हैं। अब तक वैसे ही हैं।" यहां उसने अशोक के एक भाई की कथा भी लिखी है जो अर्हत हो गया था और गृध्रकूट पर रहता था तथा जिसके लिये राजा ने असुरों से नगर मे पर्वत और गुहा बनवाई थी। साथ ही उसने राधास्वामी नामक एक ब्राह्मण बौद्ध का माहात्म्य और चरित भी लिखा है। फाहियान ने यहां एक ऐसे संघाराम का भी उल्लेख किया है जहां मजुश्री नामक एक ब्राह्मण आचार्य्य रहता था और दूर दूर के लोग विद्याभ्यास के लिये वहां आते थे। यह संघाराम अशोक के स्तूप के पास था।

इस देश की सपन्नता का वर्णन फाहियान ने इस प्रकार किया है "मध्य देश मे इस जनपद का यह सबसे बड़ा नगर है। अधिवासी संपन्न और समृद्धिशाली हैं। दान और सत्य मे स्पर्धालु हैं।" फाहियान ने यह भी लिखा है कि यहां बड़ी धूम-धाम से रथयात्रा होती थी। रथयात्रा का प्रचार सारे देश भर मे था। अशोक के पहले स्तूप के विषय मे जो उसने पाटलिपुत्र मे वनवाया था, फाहियान ने लिखा है कि "पहला महा स्तूप जो उसने वनवाया नगर के दक्षिण ३ ली से अधिक दूरी पर है। इस स्तूप के सामने बुद्धदेव का पदचिह्न है। स्तूप के दक्षिण पत्थर का स्तभ है। यह घेरे मे चौदह पंद्रह हाथ और उँचाई मे ३० हाथ से अधिक है। उस पर यह वाक्य खोदा हुआ है "अशोक राजा ने जंबूद्वीप चारों ओर के भिक्षुसंघ को दान कर दिया। फिर धन देकर ले लिया। यह तीन वार किया।" स्तूप के उत्तर ४०० पग पर अशोक राजा ने 'नेले' नगर बसाया था। 'नेले' नगर मे पत्थर का एक स्तभ है। ३० हाथ से अधिक ऊँचा है। ऊपर सिह है। स्तंभ पर नगर वसने का हेतु, वर्ष, तिथि और मास खुदा है।

पाटलिपुत्र का खंडहर वर्तमान पटना के पास महाशय रत्न-ताता के उद्योग से खुदाई करने पर निकला है। अभी कुछ अंश मात्र का आविर्भाव हुआ है, शेष मिट्टी के नीचे ही दबा पड़ा है। महाराज अशोक के राजभवन के कुछ अंश को जो निकला है, देखकर स्पूनर साहेब का यह मत है कि उसकी बनावट ईरान

के महलों के ढंग की थी और इसी आधार पर मौर्य्यों को भी ईरानी कहने मे उन्होंने कुछ संकोच नही किया है। इसके तथ्यातथ्य की आलोचना "अशोक के जीवनचरित्र" मे, जिसे हम शीघ्र पाठको के सामने रखनेवाले हैं, की जायगी, पर इतना यहां कहने की आवश्यकता है कि अशोक ने अपने महलों के बनवाने मे दूर दूर के देशों से कारीगरो को बुलाकर काम लिया था। उसमे ईरान से यूनान तक के कारीगर लगे थे और अनेक प्राचीन वस्तुओ के नमूनो को लेकर उसका निर्माण कराया गया था। इसीसे यात्रियो ने उसे असुरों का बनाया लिखा है। पाटलिपुत्र नगर का उल्लेख पुराणों मे नही है। इसे मगध के महाराज अजातशत्रु ने गंगा और सोन के संगम पर बसाया था। पहले वहां लिछिवी लोगो के आगे बढने को रोकने के लिये अजातशत्रु ने एक दुर्ग बनवाया था। दुर्ग उसके राजत्वकाल मे पूरा बन गया था या नही यह नहीं कहा जा सकता पर नगर की पूर्ति उसके पुत्र उदयन के काल मे हुई। महाराज नंद के समय मे मगध की राजधानी पाटलिपुत्र थी। धननद को ध्वंस कर चाणक्य के उद्योग से चंद्रगुप्त मगधाधिप हुआ और उसने पाटलिपुत्र को अपनी राजधानी बनाया। तब से लगातार पाटलिपुत्र की श्रीवृद्धि होती गई। चद्रगुप्त के पोते अशोक के समय मे वहां अनेक भवन आदि और विशेषतः विहार और स्तूप बने। नेले नगर का पता अब तक नहीं चला है। अधिक संभव जान पड़ता है कि अशोक ने इस नगर को उस समय बसाया हो जब

वह बौद्ध धर्म की दीक्षा ले त्यागी बनकर अलग रहने लगा था। यह एक छोटा सा ग्राम था। इसके पास के स्तूप पर क्या खुदा था, ठीक उस गाँव के बसाने का कारण और तिथि मिति लिखी थी वा नहीं, इसके विषय मे हम कुछ नही कह सकते। अधिक सभव है कि उस स्तूप पर अशोक के धर्माभिलेख रहे होंगे जिसे फाहियान ने उस नगर के बसने का हेतु और तिथि मिति समझ लिया होगा। अशोक राजा के भाई का उल्लेख जो फाहियान ने किया है वह महेद्र ही प्रतीत होता है और अधिक संभव जान पड़ता है कि उसीके संबंध से अशोक को बौद्ध धर्म पर प्रेम और श्रद्धा भक्ति हुई हो। उस समय फाहियान ने जो देश मे औषधालयो और धर्मशालाओं का उल्लेख किया है वे संभवत: वेही धर्मशालाएँ और चिकित्सालय थे जिन्हे अशोक ने सारे राज्य मे स्थापित किया था और जिनका उल्लेख अशोक के द्वितीय अनुशासन मे है। उस समय उन चिकित्सालयो का व्यय राज्य की ओर से नहीं दिया जाता था किंतु श्रद्धालु सेठ और धनिक लोग ही उनके व्यय के लिये प्रबंध करते थे। जगह जगह सड़कों और मार्गों का उल्लेख जो फाहियान के यात्रा-विवरण मे पाया जाता है प्राय. उन्ही राजमार्गों का निर्देशक जान पड़ता है जिन्हे अशोक ने अपने समय में राजभर मे बनवाया था और जिनका उल्लेख अशोक के अभिलेखों मे है।

पाटलिपुत्र से फाहियान और तावचिग दक्षिण-पूर्व की ओर चले। ९ योजन चलने पर एक पर्वत मिला। उस पर्वत की गुहा

मे देवराज शक्र ने भगवान बुद्धदेव के पास आकर बयालीस प्रश्न भूमि पर रेखा खींच खींच कर किए थे। फाहियान ने लिखा है कि लकीरें अब तक पत्थर पर बनी हैं और यहा पर एक संघाराम भी है। सुएनच्वांग ने इस गुहा का नाम 'इंद्रशील' गुहा लिखा है। यह स्थान गया से ३६ मील पर पचाना नदी के किनारे है। नदी के किनारे गिरियक गॉव के पास एक पर्वत की दो चोटिया हैं जो नदी पर लटकी हुई हैं। इनमे जो अधिक उत्तर ओर की चोटी है उसकी माथी चौकोर है। उस पर अनेक खंडहर भी देख पड़ते हैं। शक्र के उन बयालीस प्रश्नो का विवरण कल्पसूत्र मे था जिसका अनुवाद कश्यप-मातग ने चीन देश मे जाकर ६१ ईसवी मे चीनी भाषा मे किया था। सूत्रपिटक मे भी अनेक स्थानो पर शक्र के प्रश्नो के उत्तर जो बुद्धदेव ने दिए थे मिलते हैं। पर मुख्य ग्रथ जिसमे इन बयालीस प्रश्नों के उत्तरों का वर्णन है और जिसका अनुवाद कश्यप-मातंग ने चीनी भाषा मे किया था अब तक पाली वा सस्कृत में नहीं मिलता।

इंद्रशील गुहा से दक्षिण-पश्चिम एक योजन चलकर वे एक गॉव मे पहुँचे जिसका नाम 'नाल' लिखा है। यह सारिपुत्र का जन्मस्थान था और यहो वह परिनिर्वाण भी प्राप्त हुआ था।

सारिपुत्र का निर्वाण बुद्धदेव के जीवन-काल ही मे हो चुका था। कहते हैं कि जब बुद्धदेव से सारिपुत्र को यह मालूम हुआ कि लोकनाथ का परिनिर्वाण होने को है तो सारिपुत्र ने निवेदन किया कि मैं यह घटना अपनी ऑख से न देखू। यह

वात उसने बुद्धदेव से तीन वार कही और बुद्धदेव की अनुमति ले उनकी सौ बार परिक्रमा कर तथा तीन वार उनके चरण कमलों पर अपना मस्तक धर वह राजगृह की ओर परिनिर्वाण प्राप्त होने के लिये चला। नालंदा मे पहुँचते पहुँचते वह परिनिर्वाण प्राप्त हुआ। सारिपुत्र का जन्मस्थान 'उपतिष्य' नामक ग्राम पाली ग्रंथों मे लिखा है। संभव है कि नाल इसके पास ही का कोई ग्राम रहा हो अथवा 'नाल' ग्राम ही का नाम उपतिष्य हो। अथवा नाल वह ग्राम हो जहां सारिपुत्र और मौद्गलायन अपने आचार्य्य के पास विद्याध्ययन करते रहे हों। नाल ग्राम को फाहियान ने गिरियक वा इंद्रशील पर्वत से दक्षिण-पश्चिम एक योजन पर लिखा है, और सुयेनच्वांग ने बुद्धदेव के बोधि वृक्ष से ७ योजन पर। लकावालो के पाली ग्रंथों मे बुद्धगया से नालद एक योजन पर लिखा गया है। यद्यपि इन सब पर विचार करते हुए नालद के स्थान को निश्चय करने मे बड़ी कठिनाई पड़ती है, फिर भी नालद का ठीक पता वहुत दिन हुए जनरल कनिंगहम साहब ने निश्चय कर दिया है। उसका खंडहर वड़गाँ गॉव के पास वर्तमान है। वह २६०० फुट लंबाई और ४०० फुट चौड़ाई मे है। पूर्व काल में वहां एक महाविद्यालय था जहां देश देशांतर के विद्यार्थी विद्याभ्यास के लिये आते थे। फाहियान ने वहां केवल एक स्तूप का उल्लेख किया है जो सारिपुत्र के निर्वाण के स्थान पर बना था। सुयेनच्वांग का कहना है कि नालंद मे एक वड़ा विद्यालय था। वहां उसने शीलभद्र आचार्य्य

से योग-शास्त्र पढ़ा था। यहाँ उसने अनेक धर्मग्रंथों का अध्ययन किया और अनेक शकाओ का समाधान कराया था। यहीं उसने व्याकरण शास्त्र और हिंदुओ के अन्य ग्रंथो का अध्ययन भी किया था। यह नालद का प्रसिद्ध विश्वविद्यालय विहार प्रांत मे था और उसके खडहर अब भी मिलते हैं।

नालंद से पश्चिम एक योजन चलकर दोनों यात्री नवीन राजगृह में पहुँचे। फाहियान ने इसे अजातशत्रु का बसाया लिखा है पर अन्य ऐतिहासिको का मत है कि इस नगर को महाराज बिबिसार ने बसाया था। चाहे अजातशत्रु ने इसे अपनी राजधानी बनाकर इसकी श्री की अधिक वृद्धि की हो पर इसकी नींव बिंबिसार ही की दी हुई प्रतीत होती है। इस नगर मे दो संघाराम थे और नगर के बाहर पश्चिम द्वार से ३०० पग पर एक सुंदर स्तूप था जिसे महाराज अजातशत्रु ने बुद्धदेव के उस धातु पर बनवाया था जो उसे कुशनगर मे बाँटे मे मिला था। अधिक संभव है कि यह स्तूप उस समय ध्वस्तावशेष रहा हो। राजा अशोक ने अवश्य उसे गिरवा बुद्धदेव के धातु को निकलवा लिया होगा। नगर के दक्षिण द्वार से निकल कर दक्षिण ओर ४ ली पर पाँच पर्वत के बीच का दून मिला। यह दून बिलकुल पर्वतों से परिवेष्टित है। इसी दून के बीच मे प्राचीन राजगृह का नगर बसा था। महाराज बिबिसार की पहले यही राजधानी था। बुद्धदेव यहां प्राय. रहे थे। फाहियान का लिखना है कि यह नगर पूर्व-पश्चिम पाँच छ ली और उत्तर-दक्षिण

सात आठ ली लंबा चौड़ा था। यहां अनेक ऐतिहासिक घट-
नास्थलो का उल्लेख फाहियान ने किया है, जिनमे जीवक का
विहार मुख्य है। यह विहार नगर के उत्तर-पूर्व कोण मे अंब-
पाली के बाग मे उसके पुत्र जीवक का बनवाया हुआ था। यह वहां
उस समय तक वर्तमान था। नगर यात्रियों को जनशून्य मिला।
उस समय वहां कोई नही रहता था। अजातशत्रु अपने पिता से
विरुद्ध होकर प्राचीन नगर को छोड़ नए राजगृह मे रहता था,
और जब वह अपने पिता को बंदी कर स्वयं उसके स्थान पर बैठा
तो नवीन राजगृह को उसने अपनी राजधानी बनाया। फिर
बिंबिसार के मरने पर रही सही प्राचीन राजधानी और अवनति
को प्राप्त हो गई और नए राजगृह की शोभावृद्धि होने लगी।

दून मे जाकर यात्री गृध्रकूट पर्वत पर गए। उस पर्वत पर
उन्हे दो गुहाएँ मिली जिनमे बुद्धदेव और आनंद दोनों बैठकर
ध्यान करते थे। बुद्धदेव की गुहा चोटी पर से तीन ली इधर को
पड़ती थी और आनंद की गुहा इससे पश्चिमोत्तर दिशा मे ३० पग
पर थी। यात्री घाटी मे घुसकर पर्वत के किनारे से पूर्व-दक्षिण
ओर १५ ली चढ़कर गृध्रकूट पर पहुँचे थे। फाहियान ने लिखा
है कि "आनंद उसमे बैठा ध्यान करता था। देवमार पिसुन गृध्र
का रूप धर आया और कंदरा के सामने बैठा। उसने आनंद को
डराया। बुद्धदेव (अपनी) अलौकिक शक्ति से सब जान गए।
उन्होंने पत्थर फोड़कर अपना हाथ निकाला और आनंद का
कंधा ठोका। तत्क्षण भय जाता रहा। पक्षी का पद-चिह्न और

हाथ (निकालने) का दरार अब तक है। इसीसे गृध्रकूट इसका नाम पडा।" यहां उसे चारो बुद्धो के बैठने के स्थान और अनेकों अर्हतो के ध्यान करने की गुफाएँ मिली। वह लिखता है कि बुद्धदेव गुफा के सामने चंक्रमण कर रहे थे। देवदत्त ने पर्वत के उत्तर के करारे से पत्थर चलाया। वह बुद्धदेव के पैर के अंगूठे मे लगा। यह पत्थर अब तक है। लेगी साहेब ने नीचे टिप्पणी मे लिखा है कि सुयेनच्वांग ने इस पत्थर को चौदह पद्रह हाथ ऊँचा और ३० पग गोल वा मोटा लिखा है। पर हमने तो सारा सुयेनच्वांग का विवरण उलट मारा कही इसका पता तक न चला। हमी को क्या प्रोफेसर समद्दार को भी इसकी सत्यता की कहीं गंध नही मिली है और न उन्होंने अपने बँगला अनुवाद मे इसे टिप्पणी ही मे लिखा है। फाहियान ने इस पर्वत के विषय मे लिखा है कि "इस पर्वत का शिखर हरा भरा और खडा है। यह पॉचो पर्वतो मे सब से ऊँचा है।" यहां फाहियान ने बुद्धदेव का धर्मोपदेश मंडप देखा। वह गिर गया था और केवल ईटों की नींव मात्र रह गई थी। यहां उसने बुद्धदेव के पदचिह्न की पूजा पुष्प धूप दीप से की। रात भर दीप जलाया। सुरंगम सूत्र गाया और रात भर रहकर वह नए नगर को लौट गया।

प्राचीन नगर से चलकर वे करड-वेणु-वन विहार मे गए। वेणुवन विहार वहा से उत्तर ३०० पग पर सड़क के पश्चिम ओर था। वहां कुछ भिक्षु रहते थे। वेही विहार की सफाई करते थे। करंडवन विहार से फिर एक श्मशान से हो कर पिप्पल गुहा मे

गए। इस गुहा मे भगवान बुद्धदेव भोजनानतर वेठ कर ध्यान किया करते थे। वहां से पश्चिम पाँच छ ली पर एक और गुहा पड़ी जिसको शतपर्णी गुहा कहते थे। इस गुहा मे बुद्धदेव के परिनिर्वाण के अनंतर ५०० अर्हतों ने पिटक का संग्रह किया था। ५०० मे एक अर्हत की कमी थी। आनंद उस समय अर्हत नहीं हुआ था। वहां एक स्तूप वना था। फाहियान ने लिखा है कि "पूर्व के किनारे वहुत से अर्हतों के वैठ कर ध्यान करने की अनेक गुफाएँ हैं।" उसे पुराने नगर से पश्चिम निकल कर तीन ली पर देवदत्त की गुफा मिली और उससे ५० पग पर एक वड़ी चौकोर शिला मिली जिस पर एक भिक्षु ने शरीर को अनित्य दु:खमय और नि:सार समझ कर आत्महत्या कर ली थी और अपना गला एक छुरी से काट डाला था। वह अर्हत होकर निर्वाण-पद को पहुँचा था।

ये सब स्थान राजगृह के आस पास के पर्वतों मे हैं। यहां यात्री कई दिन तक रहे थे और उन्होने अनेक दर्शनीय स्थानो का दर्शन किया था।

राजगृह का खडहर पटना जिले के विहार विभाग मे है। प्राचीन राजगृह का नाम कुशनगरपुर था। सुयेनच्वांग ने इसे "किउशीलो पुलो" लिखा है। पुराणो मे इसे गिरिव्रज लिखा गया है। गिरिव्रज का अर्थ है पहाड़ों के बीच का दून। यह पॉच पर्वतों के मध्य वसा हुआ था। इन पॉच पर्वतों मे एक वैभर की पहाड़ी है जिसे शतपर्णी गुफा के नाम से चीनी यात्रियों ने

लिखा है। इसी का नाम पाली ग्रंथों मे वैभर गिरि है। दूसरा पर्वत रत्नगिरि है। इसे फाहियान ने पिप्पल गुहा लिखा है। इसी को महाभारत मे 'ऋषिगिरि' और पाली ग्रथो मे पंडव नाम से लिखा गया है। तीसरे पर्वत का नाम विपुल है। इसे महाभारत में चैत्यक और पाली ग्रंथों मे वेपुल्लो लिखा है। शेष दो छोटे छोटे पर्वत हैं।

प्राचीन राजगृह के चिह्न ५ मील के घेर मे अब तक विद्यमान हैं। डाक्टर बुकनन की सम्मति है कि दुर्ग मे पश्चिमोत्तर के कोने मे नगर बसा था। दक्षिण-पश्चिम दिशा मे एक नए दुर्ग के चिह्न मिलते हैं, जिसके किनारे पत्थर का प्राचीर बना था। पूर्व और उत्तर दिशा मे परिखा नहीं है, किंतु १२ हाथ मोटी पत्थर की दीवार है। पूर्व दिशा से प्रवेश का अवरोध एक मोटी सुदृढ़ पत्थर की दीवार से किया गया था, जो १३ हाथ मोटी थी और टेढ़ी मेढ़ी होकर दक्षिण के पर्वत से मिल गई थी। भीतर दुर्ग ६०० गज के घेरे मे था। नगर के दक्षिण कुछ पत्थर पर खुदा हुआ है जिसे आज तक लोग नही पढ़ सके हैं। नवीन राजगृह प्राचीन राजगृह से पौन मील उत्तर दिशा में है।

उस पत्थर से जहां पर भिक्षु अपना गला काट कर अर्हत हो निर्वाण प्राप्त हुआ था पश्चिम चार योजन चलकर दोनों यात्री गया मे पहुँचे। नगर के भीतर सुनसान और उजाड़ मिला। वहां से दक्षिण १२ ली पर वह स्थान मिला जहां बुद्धदेव ने ६ वर्ष तक घोर तपश्चर्य्या की थी। वहां उस समय घोर जंगल

था। उस जंगल से पश्चिम ३ ली पर वह जलाशय पडा जहां बुद्धदेव तपश्चर्य्या त्याग कर स्नान करने के लिये गए थे और निर्बलता के कारण निकल कर किनारे पर चढ़ते समय गिर पड़े थे और बड़ी कठिनाई से एक वृक्ष की शाखा पकड़ कर बाहर निकले थे। फाहियान ने लिखा है कि "एक देवता ने वृक्ष की डाली झुकाई थी"। उससे उत्तर १ ली पर वह स्थान पड़ा जहां गाँव की लडकियां बुद्धदेव को खीर खाने के लिये दे गई थीं। उससे भी उत्तर २ ली पर वह स्थान पड़ा जहा वृक्ष के नीचे पूर्वाभिमुख पत्थर की शिला पर बैठकर उन्होंने खीर खाई थी। फाहियान ने लिखा है कि वृक्ष और शिला अब तक हैं। शिला की लंबाई चौड़ाई ६ हाथ और ऊँचाई २ हाथ है। उस स्थान से आधा योजन पूर्वोत्तर पर एक कंदरा मिली जिसमें बुद्धदेव ने बैठकर अपने बोधिज्ञान लाभ करने के विषय मे सगुन विचारा था। वहां पर शिला की छाया देख पडी थी। फाहियान लिखता है कि वह "तीन हाथ से अधिक ऊँची अब तक चमकती है"। यहां देवताओं से यह सूचना पाकर कि यह वह स्थान नहीं है जहा बुद्ध लोग बोधिज्ञान प्राप्त करते हैं बुद्धदेव आगे चले। देवताओं के मार्ग दिखलाने पर वे वहां से पश्चिम और बोधिद्रुम की ओर चले थे। मार्ग में ३० पग पर जाकर उन्हे किसी कुश उखाड़नेवाले ने कुश के पूले दिए थे। फाहियान ने लिखा है कि यह भी एक 'देवता' था। फिर आगे १५ पग जाने पर फाहियान का कहना है "५०० हरे पची उड़ते हुए आए, बोधिसत्व की तीन परिक्रमा कीं, और

चले गए।" हरे पक्षी से संभवतः उसका अभिप्राय तोतो से जान पड़ता है क्योंकि वहां तोते प्राय' धाग वॉधकर उड़ते हैं। फिर बोधिद्रुम मिला। फाहियान ने उसे 'पत्र' वृक्ष लिखा है। संभवतः यह "चलपत्र" होगा। सस्कृत भाषा में "चलपत्र" पीपल के वृक्ष को कहते हैं। यहीं पर मार ने उनके बोधिज्ञान के प्राप्त करने मे विघ्न डालना चाहा था पर वह परास्त होकर भागा था और यहीं उन्हे बोधिज्ञान लाभ हुआ था। इन स्थानो पर स्तूप बने थे और मूर्तियां स्थापित थीं। फाहियान का कहना है कि "वे अब तक हैं"। बोधिज्ञान लाभ करने के स्थान पर उसे तीन सघाराम मिले और सब में भिक्षु थे। बुद्धदेव के अनेक लीलास्थलों पर जैसे चंक्रमण-स्थान, ध्यानस्थानादि पर स्तूप बने थे। भिक्षुओ के विषय मे फाहियान का कथन है "भिक्षुसंघ सब आवश्यक पदार्थ दे देते हैं किसी प्रकार की कठिनाई नहीं होती। विनय का यथार्थ पालन करते हैं। बैठने उठने और संघ मे जाने के आचार व्यवहार उसी नियम के अनुसार हैं जैसे बुद्धदेव के समय मे थे। संघ १००० वर्ष से अब तक चला आ रहा है। वहा दक्षिण तीन ली पर कुक्कुट-पाद वा गरुड़पाद पर्वत पडा। यहां महाकश्यप का स्थान था। फाहियान ने लिखा है कि "महाकश्यप अब तक इस पर्वत मे रहते हैं। वे पर्वत की दरार मे प्रवेश कर गए हैं। प्रवेश के स्थान मे मनुष्य की समाई नही है। नीचे जाकर दूर किनारे पर एक बिल है। कश्यप सदेह उसमे (रहते) हैं।" वहां की मिट्टी के विषय मे फाहियान ने लिखा है कि "बिल पर कश्यप ने हाथ धोया

था। आस पास के लोगों के सिर में घाव लगता है तो यहां की मिट्टी लगाकर वे चंगे हो जाते हैं।" यह बात उसने सुनी सुनाई लिखी है जो वहां के भिन्तुओं ने कही होगी। पर्वत मे उसने अनेक अर्हतों का रहना लिखा है। उसका कथन है कि "आसपास के सारे जनपद के बौद्ध लोग साल साल कश्यप की पूजा आकर करते हैं। धर्म में श्रद्धालुओ के पास रात को अर्हत आते हैं, बातचीत करते हैं, शंका समाधान करते हैं और अंतर्धान हो जाते हैं।" यह बात वैसी ही है जैसे अब तक लोग झूसी और गिरनारादि के सिद्ध के विषय मे कहा करते हैं वा हरिद्वारादि के महात्माओ के विषय में गढ़ंत गढ़ते हैं पर आज तक वे किसी को नहीं मिले। लोग सीधे सादे लोगों को इस प्रकार की बातों मे फाँसकर अपना स्वार्थ साधा करते हैं वा आतंक और महत्त्व जमाते हैं। यदि तनिक भी यह कह दे कि यह असंभव है वा मिथ्या है, फिर क्या है, आप नास्तिक हैं, विधर्मी हैं, यह कलियुग है, इन बातों से ही तो यह दुर्दशा है, इत्यादि अनेक प्रकार की बौछार होने लगती है। खेद का विषय है कि ऐसी बातें कहनेवाले अपने आचरणों की ओर तनिक भी दृष्टिपात नहीं करते कि वे कितने कलुषित और वचकता से भरे हैं जिनसे वेचारे यात्रियों के आचरण और उनकी बातों को न माननेवालों की चाल ढाल कहीं पवित्र और सरल है। हाय! ऐसे ही लोगो की चाल से पवित्र तीर्थों की महिमा दिनों दिन घटती जा रही है। ये लोग सुंदर फल के कांटे हो रहे हैं जिनके भय से कोई अपने पवित्र तीर्थस्थानों

और प्राचीन पीठो को जाकर आनंदपूर्वक उनका दर्शन भी नहीं कर सकता।

ये सब स्थान बोधगया के आसपास के हैं जिनके खंडहर अब तक बोधगया मे वर्तमान हैं। हर्ष पर्वत और शोभानाथ के मध्य, तथा कुर्कीहार से सात मील उत्तर-पूर्व मे बौद्धो के अनेक खंडहरों के चिह्न हैं। जेठियां, क्रोच, डोंगरा पहाड़ी में भी अनेक खंडहर मिलते हैं। गुनेरी मे बुद्ध की अनेक मूर्तियां हैं और एक संघाराम के चिह्न मिलते हैं। इनके अतिरिक्त अन्यत्र भी संघारामों, गुफाओ और विहारो के चिह्न मिलते हैं।

गुरुप्पा व गरुड़पाद से फाहियान पाटलिपुत्र की ओर फिरा और गंगा के किनारे पश्चिम-उत्तर दिशा मे १० योजन पर उसे 'अनालय' नामक विहार मिला। यह अनालय बलिया के आसपास मे था। बलिया के गजेटियर मे लिखा है कि फाहियान ने जिसे अनालय वा आरण्य और सुयेनच्वांग ने जिसे अविद्धकरण लिखा है वह स्थान बलिया नगर के पास था और अब 'ओयना' कहलाता है। यहां खंडहर हैं। पर कारलायल ने इसे गड़हा परगना में नारायणपुर मानने पर ज़ोर दिया है। जान पड़ता है तावच्गि गरुड़पाद से थोड़ी दूर साथ चलकर पाटलिपुत्र को चला गया वा गया ही मे रह गया। फाहियान ने स्वय छत्तीसवे पर्व मे लिखा है कि तावच्गि जब मध्य प्रदेश मे पहुँचा और उसने श्रमणो को देखा तथा उसे संघ का उत्कृष्ट आचार व्यवहार और बात बात मे विनय का अनुसरण मिला तो

तावचिंग को चीन के भिक्षुसंघ के अधूरे और विच्छिन्न विनय का स्मरण आया। उसने शपथ करके कहा कि अब से जब लो बुद्ध न होऊँ प्रांत की भूमि मे जन्म न लूं। फिर वह वही रह गया और न लौटा। ये बातें देखकर यह दृढ़ विश्वास होता है कि ताव-चिंग पाटलिपुत्र कदापि नही गया अपितु बोधगया मे ही रह गया था, जहां के बोधिज्ञान प्राप्त होने के संघाराम के भिक्षुओ के विषय मे स्वयं फाहियान ३१ पर्व मे यह लिख चुका है कि वे 'विनय का यथार्थ पालन करते हैं। बैठने उठने और संघ मे जाने के आचार व्यवहार उसी नियम के अनुसार हैं जैसे बुद्धदेव के समय मे थे। संघ १००० वर्ष हुए अब तक चला आरहा है।' वहीं पर तावचिंग का ऐसा संकल्प करके कि जब तक बुद्ध न होऊं प्रांत की भूमि मे जन्म न लूं रह जाना युक्तियुक्त प्रतीत होता है। अस्तु।

अनालय से गंगा के किनारे चलकर फाहियान को वाराणसी जनपद का नगर काशी मिला। नगर से पश्चिम १० मील पर ऋषि-पत्तन मृगदाव का विहार था। यहीं पर भगवान् बुद्धदेव ने धर्म-चक्र प्रवर्तन किया था। यहां उसे अनेक स्तूप मिले, वे स्तूप उस समय तक थे। भीतर दो संघाराम थे। उनमे श्रमण रहते थे।

वाराणसी जनपद का नगर उस समय काशी ही कहलाता था। काशी के पास ही मृगदाव था। फाहियान ने मृगदाव को नगर से दस ली उत्तर-पूर्व लिखा है। मृगदाव को अब सारनाथ कहते हैं। नगर का कुछ विशेष वर्णन न लिखने से जान पड़ता है कि वह काशी मे नहीं आया था। सारनाथ मे अब भी 'धमेख' अर्थात् धर्मचक्र

स्तूप है। वहीं एक संघाराम का चिह्न भी है। आसपास अनेक छोटे छोटे स्तूपों के चिह्न हैं। यहां उसने अनेक स्तूप देखे।

वाराणसी का वर्णन करने के साथ ही फाहियान ने कुछ वर्णन कौशांवी का और विशेष वर्णन दक्षिण का किया है। कौशांवी मे उसने गोक्षीर विहार का उल्लेख किया है। पाली वौद्ध ग्रंथों से यह पता चलता है कि कौशावी मे गोशिर, कुक्कुट और पावरिक नाम के तीन वैश्य थे। ये तीनो श्रावस्तो मे वुद्धदेव के पास उन्हे चातुर्मास्य के लिये निमंत्रित करने गए थे। इन लोगो ने उनके लिये एक विहार वनवाया था। विहार का नाम पाली ग्रंथों मे कुक्कुटाराम लिखा है। उनकी प्रार्थना पर वुद्धदेव ने अपना नवाँ चातुर्मास्य कौशावी मे कुक्कुटाराम मे किया था। जान पडता है कि फाहियान ने उसी को गोशीत का विहार लिखा हो जो उच्चारण-भेद से गोसिर, गोछीर, वा गोक्षीर हो गया हो। कौशावी का खडहर अव तक इलाहावाद के जिले मे जमुना के किनारे है। उस स्थान को जहां पर खंडहर हैं अव 'कोसम' कहते हैं। वहां दो गाँवों मे, जिन्हे कोसम-इनाम और कोसम-खिराज कहते हैं खंडहर मिलते हैं। वहां एक स्तूप भी था। फाहियान ने कौशांवी के संवंध मे केवल एक गोसिर वा 'गोक्षीर' विहार का ही उल्लेख किया है पर सुयेनच्वांग ने लिखा है कि यहां दस संघाराम हैं। ३०० भिक्षु रहते हैं। नगर के भीतर एक पुराना मदिर है जिसमे वुद्धदेव की एक मूर्ति है जो चंदन की वनी हुई है। उस पर पत्थर का एक छत्र है जिसे उदयन राजा ने वन-

वाया था। भवन के दक्षिण एक भवन का खंडहर है। यह गोशिर के रहने का घर है। नगर से थोड़ी ही दूर पर दक्षिण ओर एक विहार है जिसे गोशिर के नाती ने बनवाया था। इसमे २०० फुट ऊँचा स्तूप है। इसे अशोक राजा ने बनवाया था। इस स्तूप के दक्षिण एक दोतला स्तूप है। वहां वसुवधु ने (न्याय) विद्या-सिद्ध-शास्त्र रचा था। इसके दक्षिण आम का एक बाग है। वहां एक खंडहर है। वहीं पर 'असंग' ने एक और शास्त्र रचा था जिसका नाम प्रकरण-वाक्य-शास्त्र-कारिका था। इससे भी यह अनुमान दृढ़ होता है कि फाहियान कौशावी नहीं गया था, केवल सारनाथ मे जो कुछ यात्रियों से सुना और उसमे जितना वह समझ सका उसने लिख दिया है। इसके अतिरिक्त यक्ष को भगवान बुद्धदेव ने जहां उपदेश दिया था उस स्थान को फाहियान ने कौशांबी से ८ योजन पर लिखा है पर वह स्थान जनरल कनिंगहम साहब के अनुमान से 'पभोसा' है, जो 'कोसम' से केवल चार मील पश्चिम ओर है। इसके अतिरिक्त यदि फाहियान कौशांबी की ओर सचमुच गया होता तो अधिक नहीं तो कुछ न कुछ प्रयाग का अवश्य उल्लेख करता क्योंकि सारनाथ से कौशांवी जाते हुए उसे प्रयाग अवश्य मार्ग मे पड़ता।

दक्षिण का वर्णन तो उसने अश्रुतपूर्व ही किया है। कश्यप बुद्ध के पारावत विहार का वर्णन 'न भूतो न भविष्यति' है। यह तो देखने से चंडूखाने की गप्प ही प्रतीत होता है। यह कुछ उस वर्णन से कम नहीं है जो आज से चालीस पचास वर्ष पहले

बंगाल और कामरूप से लौटे हुए यात्री वहां के मंत्र यंत्र के विषय मे किया करते थे। यह अनुमान होता है कि दक्षिण की बातें उसने दक्षिण के किसी यात्री से सुनकर लिखी हैं और वह यात्री भी सामान्य मनुष्य नहीं था, कोई महाधूर्त था जिसने एजटा की गुहा वा दक्षिण के किसी अन्य प्राचीन मंदिर को देखा था वा उसके वर्णन को किसी अन्य से सुन के सीधे सादे विदेशी भिक्षु के लिये वर्णन किया था।

फाहियान वाराणसी से पूर्व ओर लौटकर पाटलिपुत्र चला आया। इस वाक्य से भी यही स्पष्ट सिद्ध होता है कि फाहियान कौशांबी नहीं गया था और उसने जो कुछ वहां के विषय मे लिखा है वह सुनी सुनाई बात है।

फाहियान के भारतवर्ष आने का मुख्य उद्देश्य धर्मग्रथों की प्रतियों का संग्रह करके उन्हे अपने देश ले जाना ही था। पॉच साथियों मे दो मध्य देश तक पहुँचे थे। पाटलिपुत्र मे लौटकर उसने प्रतियो की खोज करना प्रारंभ किया। जहां उसने देखा सब जगह मौखिक शिक्षा आचार्य्य लोग गुरुपरंपरा से देते चले आते थे। वह बड़े दु:ख से लिखता है कि "इतनी दूर चलकर मध्य हिंदुस्तान आया। यहां महायान के संघाराम मे एक निकाय का विनय मिला अर्थात् महासंघिक निकाय का विनय।" फाहियान ने अट्ठारह निकायों का उल्लेख किया है। इसे भ्रमवश अनुवादकों ने 'सम्प्रदाय' लिखा है। बौद्धों मे निकाय वैसे ही हैं जैसे हिंदुओ मे वेदों की शाखाएँ। जिस प्रकार

प्रत्येक शाखा की संहिता और ब्राह्मण पृथक् पृथक् हैं और इतनी शाखाओं मे संहिता एक होते हुए भी ब्राह्मण मे भेद है, यदि संहिता और ब्राह्मण एक हैं तो उनके श्रौत-स्मार्त सूत्र मे भेद हैं, वैसे ही बौद्धो के निकाय थे। निकाय दर्शन-भेद नहीं थे किंतु कर्मकांड के भेद थे। बौद्ध धर्म मे मुख्य निकाय चार थे। उन्हींके भेद अट्ठारह होकर अट्ठारह निकाय कहलाते थे। वे चारों मुख्य निकाय ये थे—

१—'आर्यसघिक' निकाय—इस निकाय के अवांतर भेद सात हो गए थे जो अलग अलग निकाय के नाम से प्रख्यात थे।

२—'आर्यस्थविर' निकाय—इसके भी अवांतर निकाय तीन थे।

३—'आर्यसम्मति' निकाय—इसके चार अवांतर निकाय थे।

४—'आर्य सर्वास्तिवाद' निकाय—इसके भी चार अवांतर निकाय थे।

येही अवांतर निकाय उस समय अट्ठारह निकाय कहलाते थे। इनके विनय मे भी कुछ क्रमभेद पाठभेद और क्रिया-कलाप-भेद था। इन चारों निकायों के त्रिपिटक के श्लोकों की संख्या भी निम्नलिखित थी—

१ आर्यसघिक निकाय।	१०००००
२ आर्यस्थविर निकाय।	१०००००
३ आर्यसम्मति निकाय।	२०००००
४ आर्य्यसर्वास्तिवाद निकाय	ज्ञात नहीं।

पटने मे रहकर फाहियान ने विनय पिटक की बड़ी खोज की और बड़ी कठिनाई से उसे यहां निम्नलिखित ग्रंथ हाथ आए—

१–'महासंघिक निकाय' का 'विनय पिटक'

२—एक और अज्ञात निकाय का विनय (नाम नहीं दिया है)

३—'सर्वास्तिवाद निकाय' का विनय पिटक

४ –संयुक्त धर्म हृदय

५—एक और अज्ञात निकाय का सूत्र पिटक

६—परिनिर्वाण वैपुल्य सूत्र

७—महासंघिक निकाय का "अभिधर्म पिटक"

पटने मे रहकर फाहियान ने केवल ग्रंथों का संग्रह ही नहीं किया अपितु तीन वर्ष वहां रह कर उसने संस्कृत के ग्रंथों का अभ्यास किया और विनय पिटक की प्रतिलिपि की।

संस्कृत भाषा मे ज्ञान प्राप्त कर तीन वर्ष के बाद फाहियान ने जब देखा कि 'तावचिंग' अब अपने देश न जायगा तो वह गंगा के किनारे किनारे पूर्व दिशा मे चला, कि समुद्र से होकर अपने देश को लौट जाय। १८ योजन पर उसे गंगा पार करने पर चंपा का देश मिला। वहां बुद्धदेव के चंक्रमण स्थान पर विहार था। उसमे उसे भिक्षु मिले। वहां अन्य बुद्धों के चंक्रमण स्थान भी थे जहां स्तूप बने थे।

चपा जनपद भागलपुर जिले के आस पास था। उसकी राजधानी 'चंपा' अब तक भागलपुर मे चंपा नगरी के नाम से

कहलाती है। प्रत्नतत्त्वविदों के अनुसंधान से चंपा नगरी ही चपा की प्राचीन राजधानी सिद्ध होती है। वहां खंडहर भी हैं।

चपा से पूर्व ५० योजन जाकर फाहियान "ताबलिप्ति" जनपद मे पहुँचा। वहां बंदर था। फाहियान ने लिखा है कि इस जनपद मे २४ संघाराम हैं और श्रमण रहते हैं। बौद्ध धर्म का भी अच्छा प्राचार है। यहां फाहियान ने दो वर्ष और ठहर कर सूत्रो की प्रतिलिपि, संभवतः अनुवाद, किया और मूर्त्तियों का चित्र बनाया।

यह ताम्रलिप्त वही स्थान है जहां अब बंगाल मे "तमलुक" है। तमलुक मिदिनापुर जिले मे है। सुयेनच्वांग के समय मे समुद्र वहीं था। गंगा की भाठ से इतने दिनो मे समुद्र तमलुक से ६० मील पर चला गया है। यहां से बाहर को व्यापारियों की नौकाएं जाया आया करती थीं। लंका, जावा, स्याम आदि देशों से यहां से व्यापार होता था। यहां बौद्ध धर्म का उस समय अच्छा प्रचार था। सुयेनच्वांग के समय तक नगर मे दस संघाराम थे। बौद्ध काल की मुद्रा वहां अब तक मिलती हैं।

ताम्रलिप्त मे दो वर्ष रहकर फाहियान एक व्यापारी की नाव पर चढ़कर दक्षिण-पश्चिम ओर चला। उस समय जाड़े की ऋतु का प्रारंभ था। चौदह दिन मे वह सिंहल देश मे पहुँचा। वहां जाकर उसे मालूम हुआ कि सिंहल हिंदुस्तान (तमलुक) से ७०० योजन पर है।

सिंहल देश के विषय मे जो पुरानी बाते उसने लिखी हैं

वे वही हैं जो महावंश मे हैं वा जिन्हे हम लोग बचपन मे अपने पूर्वजों से सुनते आए हैं। उन्हे दुहराने की यहां आवश्यकता नही है। सिंहल के किनारे फाहियान ने अनेक टापुओं का होना लिखा है और यह भी लिखा है कि अनेक स्थलों पर मोती निकाले जाते हैं और दस मोतियों मे से ३ मोती राजा लेता है। सिहल देश के विषय मे फाहियान ने लिखा है कि राजा ब्राह्मणो के धर्म का पालन करता है। नगर के भीतर के लोगो मे (धर्म पर) श्रद्धा और विश्वास का भाव अधिक है। जनपद के शासन के प्रतिष्ठित होने से ईति, दुर्भिक्ष, विप्लव और अव्यवस्था नहीं हुई है। भिक्षु संघ के कोश मे अनेक बहुमूल्य रत्न और अमूल्य मणि हैं। राजा को कोश मे जाने और देखने का निषेध है। भिक्षु भी चालीस वर्ष वेष मे न रहा हो तो (वह भी) घुसने नही पाता। नगर मे अनेक वैश्य श्रेष्ठ (सेठ) और सावा व्यापारी बसे हैं जिनके घर सुदर और भव्य हैं। गली और रास्ते साफ सुथरे रहते हैं। सड़कों के चतुष्पथो पर धर्मोपदेश के लिये स्थान बने हैं। महीने मे अष्टमी, चतुर्दशी और पंचदशी (अमावास्या और पूर्णिमा) के दिन आसन बिछता है, ऊँची गद्दी लगती है, चारो ओर के गृही यती इकट्ठे होते हैं, धर्म चर्चा सुनते हैं। इस जनपद के लोग कहते हैं कि यहां सब ६०००० भिक्षु रहते हैं जिन्हे सघ के भांडार से भोजन मिलता है। राजा का भी नगर मे सत्र है, पाँच छ हजार लोगों को धर्मार्थ भोजन मिलता है। संघ के भांडार मे कमी होती है तो बड़ा भिक्षापात्र उठा कर

जाते हैं-जितना आता है लेते हैं—भर जाने पर लौटते हैं। सिहल मे बुद्धदेव का एक दॉत है। उसकी वहां प्रति वर्ष रथयात्रा निकलती है। बड़ी धूम धाम होती है। उसके विषय मे फाहियान ने लिखा है कि "बुद्धदेव का दॉत निकलता है, सड़क के वीच से होकर जाता है, सव ओर से पूजा चढ़ती है, अभयगिरि (विहार) मे पहुँचता है, बुद्धदेव के मंदिर मे यती गृही एकत्र रहते हैं, धूप जलाते, दीप प्रज्वलित करते, और नाना विधि से उपचार करते हैं, यह दिन रात वंद नहीं होता, ९० दिन पूरे होने पर दॉत नगर के भीतर के विहार को लौटता है। विहार मे उपवसथ के दिन आने पर पट खुलता है, यथाविधि प्रणिपात होता है।" गिरि विहार का वर्णन करते हुए फाहियान कहता है कि "नगर के उत्तर के पदचिह्न पर राजा ने एक बृहत्-स्तूप वनवाया—४०० हाथ ऊँचा--सोना चॉदी और सर्वरत्न-जटित है। स्तूप के पास एक संघाराम वनवाया था, नाम अभय-गिरि—५००० श्रमण रहते हैं। यहां बुद्धदेव का एक मंडप भी है। उस पर सोने चाँदी और पच्चीकारी का काम है, सर्वत्र रत्न लगे हैं। मध्य में हरित नीलमणि (लाजवर्त) की एक प्रतिमा है जो २० हाथ ऊँची, सर्वांग सप्तरत्न से देदीप्यमान, प्रशांत भाव-युक्त--वाणी से वर्णनातीत है, दहिने कर मे एक अमूल्य मुक्ता है।"

इसी मंदिर मे एक वार फाहियान को जव वह अत्यंत दुखी हुआ, क्योंकि वहां वह नितांत अज्ञात और अपरिचित था, किसी की वात को नहीं समझता था, सब अपरिचित थे, एक चीनी

व्यापारी मिला जो रेशमी पंखा चढ़ा रहा था। फाहियान लिखता है कि उसे देख "विवशतः आँसू भर आए और आँखों से टप टप गिरने लगे।" यहां उसने एक अर्हंत का भस्मांत संस्कार देखा। वह अर्हंत नगर के दक्षिण ७ ली पर 'महाविहार' मे रहता था। यहां उसने एक और हिंदुस्तानी बौद्ध पंडित को कथा करते सुना था कि बुद्धदेव का भिक्षापात्र पहले वैशाली मे था, अब गांधार मे है, इतने वर्ष मे अमुक स्थान पर जायगा, फिर वहां से अमुक देश मे इत्यादि। उसके व्याख्यान को फाहियान ने कोई सूत्र ग्रंथ समझा था और वह उसे झट लिखने को तैयार हो गया था, पर जब उस पंडित ने कहा कि यह कोई सूत्र नहीं यह मेरी व्याख्या है तो चुपका रह गया और लिखा नही। उसे वर्षों की संख्या भी भूल गई।

फाहियान सिंहल मे दो वर्ष रहा। वहां उसे ढूँढ़ने पर निम्न-लिखित चार पुस्तकों की प्रतियां मिली—

१—'महीशासक निकाय' का विनय पिटक

२—दीर्घागम

३—संयुक्तागम

४—सयुक्तसंचय पिटक—(संभवतः क्षुद्रक पाठ)

इन पुस्तकों को लेकर फाहियान एक व्यापारी नाव पर सवार हुआ। वायु सानुकूल मिली पर, दुर्भाग्यवश तीन दिन चलकर तूफान आया, नाव मे पानी भरने लगा, कही नाव मे छेद हो गया था पर पता नहीं चलता था। सब लोग घबड़ा

उठे। व्यापारी भाग भाग कर छोटी नाव मे, जो उस बड़ी नाव के साथ लगी थी, भरने लगे। जो लोग उसमे पहले पहुँच गए, इस भय से कि कहीं अधिक लोग भर गए तो इस नाव के भी डूबने की आशंका होगी, उन्होने रस्सी को काट दिया और छोटी नाव बड़ी से अलग हो गई। सब यात्री घबड़ा गए, बुद्धि ठिकाने न रह गई। भारी भारी गठरी उठाकर समुद्र मे फेकने लगे, फाहियान ने भी अपना गगरा लोटा और अन्य असबाव समुद्र मे फेक दिया। वह बहुत भयभीत हुआ, मन ही मन डरता था कि कहीं लोग उसे वह गठरी भी समुद्र मे फेकने को बाध्य न करे जिसमे उसके सारे श्रम के फल स्वरूप विनय पिटक और सूत्रों की प्रतियां बँधी हैं अथवा कोई बलपूर्वक छीन कर कहीं समुद्र में उन्हे फेंक न दे। फाहियान लिखता है कि "हृदय मे अवलोकितेश्वर का ध्यान किया, हान देश के भिक्षुसंघ को प्राण अर्पण किए—मैंने धर्म को ढूंढ़ने के लिये दूर की यात्रा की है (मुझे) अपना तेज और प्रताप देकर लौटा कर अपने स्थान पर पहुँचाओ"।

तूफान १३ दिन तक रहा। सब मे लगातार घबराहट रही। तेरहवे दिन नाव दैवयोग से एक द्वीप के किनारे लगी, बेडा थमने पर नाव के छेद की जॉच हुई, छेद का पता लगा और वह बंद किया गया। ठीक ठाक हो जाने पर नाव आगे बढ़ी। समुद्र की कठिनाइयों का वर्णन फाहियान ने इन शब्दो मे किया है "समुद्र के मध्य अनेक डाकू रहते हैं, उनसे मिलने पर बचकर नहीं

जा सकते । यह समुद्र (अति) विस्तृत है, और छोर नहीं, पूर्व पश्चिम का ज्ञान नहीं, केवल सूर्य्य चंद्रमा और तारों के देखने से ठीक मार्ग पर चलते हैं, आँधी पानी मे वायु ही के ले जाने से जाते हैं, निश्चित मार्ग नहीं, रात की अँधियारी मे केवल ऊँची लहरे परस्पर थपेड़े खाती देखाई पड़ती हैं, अग्निवर्ण ज्वाला निकलती है । साथ ही साथ पानी पर बड़े बड़े कछुए और अन्य अधोवासी जतु (निकलते वा देख पड़ते) हैं । व्यापारी भय-भीत, नहीं जानते कि कहा जा रहे हैं—समुद्र गभीर, थाह नही—लगर डालने और ठहरने का ठौर नहीं, पर आकाश खुल गया तो पूर्व पश्चिम सूझने लगा, फिर लौटे, ठीक राह पर चले, कही गुप्त चट्टान पडी तो बचने का मार्ग नहीं" ।

ऐसे भयानक समुद्र मे अपने प्राण हाथ पर रखकर फाहियान नाव के मरम्मत हो जाने पर चढ़कर ९० दिन से अधिक बीतने पर जावा द्वीप मे पहुँचा । जावा द्वीप मे फाहियान ५ महीने ठहर गया । उस जनपद मे बौद्ध धर्म्म का कम प्रचार देख फाहियान लिखता है कि "इस जनपद मे ब्राह्मण धर्म के विभिन्न संप्रदायों का प्रचार था, बौद्ध धर्म की कुछ चर्चा नहीं" ।

जावा मे ५ महीने रहकर फाहियान एक और व्यापारी नाव पर चढ़ा । नाव ५० दिन की सामग्री लेकर चौथे महीने की १६वी तिथि को चली । उस वर्ष फाहियान को नाव ही पर 'वर्षावास' पड़ा । नाव जावा से पूर्वोत्तर दिशा मे 'कावचांग' जा रही थी । ठीक महीना दिन बीतते बीतते दो पहर रात गए घोर अंधकार

छा गया, पानी बरसने लगा। अँधियारी ऐसी थी कि हाथ पसारे नहीं सूझता था। सारे यात्री घबड़ा गए कि क्या होगा। फाहियान बेचारा भी अवलोकितेश्वर का ध्यान करने लगा और सारी रात प्रार्थना करता और रोता विलखता रहा। रात भर किसी को नींद न आई। राम राम कहके ज्यों त्यों सवेरा हुआ। सवेरा होते ही एक और विपत्ति का सामना पड़ा। दुर्भाग्य-वश नाव में दस पांच ब्राह्मण देवता* भी थे। उन लोगों ने सवेरा होते ही मुहाँ मुहां कहना प्रारंभ किया कि "इस श्रमण के साथ से ही हम लोगों पर यह आपत्ति आई है—यह महा संकट पड़ा है—इस भिक्षु को उतारो—समुद्र के किसी द्वीप के किनारे छोड़ दो—एक मनुष्य के लिये हम सब क्यों विपत्ति भोगें।" सारी नौका में हलचल मच गई। सब को विश्वास हो गया कि देवता लोग सत्य कह रहे हैं, हो न हो सब आपत्ति श्रमणजी ही के कारण आई हो, ठीक है—

'अतथ्यस्तथ्यो वा हरति महिमानं जनरवः'।

बेचारा फाहियान घबड़ाया। एक आँधी तो थी ही, दूसरी और आई और उससे भी घोरतर। सब एक समान नहीं होते, जहां दस बीस मूर्ख होते हैं, वहां एक आध समझदार भी निकल ही आते हैं। नाव के कोने में एक सहृदय सज्जन था। वह बोल उठा—भाई

---

*समुद्रयात्रा के विरोधियों को इस पर ध्यान देना चाहिए कि आज से चौदह सौ वर्ष पूर्व ब्राह्मण चीन जापान जाते थे और उससे उनका धर्म नहीं जाता था।

इस भिक्षु को उतारते हो तो मुझे भी उतार दो, नही तो मुझे मार ही डालो। नही तो इस भिक्षु को उतारा तो हान देश मे पहुँचूगा तो राजा के पास (जाकर) सब करनी (तुम्हारी) कहूंगा। हान देश का राजा भी बौद्धधर्मानुयायी है। भिक्षुसघ का मान करता है। फिर तो सोचो कि इसका क्या परिणाम होगा। यह बात उसके मुँह से निकली कि चारो ओर सन्नाटा छा गया। सब के सब घबडा उठे। सारा चवाव जाता रहा। फिर किसी ने बेचारे फाहियान से उतरने का नाम तक नही लिया।

आकाश मे अधकार छाया था। समुद्र मे नाविकों की बुद्धि काम नही करती थी कि किधर जाना चाहिए और कहां जा रहे हैं। नाव मार्ग छोड कर दूसरी ओर जिधर को वायु ले गई बहती चली। ७० दिन वीत गए, अनेक कष्ट विपत्ति झेलते झेलते सब का नाकों दम आ गया था। दाना पानी सब चुक गया था। सब समुद्र के खारी पानी मे पका पका कर खाते थे। व्यापारी घवड़ाए कि अब तक तो हमे "कावचांग" पहुँच जाना चाहिए था। ५० दिन की जगह ७० दिन होगए कही वारपार नहीं, अभी तक नाव घाट पर नहीं लगी—हो न हो अवश्य राह भूल कर कहीं अलग बह के चले जा रहे हैं। निदान नाव पश्चिमोत्तर दिशा मे घुमाई गई और किनारे की जोह मे चली। बारह दिन रात चल कर "चांगकांग" की सीमा पर "लाव" पर्वत के दक्षिण किनारे पर लगी। यहां पहुँच कर लोगों को मीठा पानी और साग मिले। वहां की 'लेई' और 'अको' नामक वनस्पतियों को

देखकर सबको निश्चय हो गया कि चीन देश में आ गए। पर जहां नाव टिकी वहां न बस्ती थी और न लोगों के गमनागमन के कुछ चिह्न ही देख पडते थे। सब बड़ी चिंता मे पड़े कि कहां आए? किस जगह पर हैं? कोई कहता था कि चांगकांग अभी नहीं पहुँचे, कोई कहता था कि पीछे छोड़ आए। जितने मुँह उतनी बात थी। कुछ निश्चय नहीं होता था। निदान यह स्थिर हुआ कि कुछ लोग छोटी नाव पर चढ़कर खाडी मे जावें और किनारे पर यदि कोई मिले तो उससे इतना तो पता चलावे कि किस देश में और कहां हैं। दो चार आदमी झट नाव पर चढ़कर खाड़ी में गए और इधर उधर मनुष्यों की जोह लेने लगे। बड़ी खोज खाज पर दो शिकारी मिले पर उनकी बोली उनकी समझ मे न आई। विवश हो नाव पर बैठा कर उन्हें साथ लाए। लोगों ने फाहियान से कहा—भाई अब तुम्हीं यह काम करो। उन लोगों से बातचीत करके कुछ पता ठिकाना तो जानो कि हमलोग हैं कहा? चांगकाग पहुँचे वा नहीं। आगे है वा पीछे छूट गया है। निदान फाहियान ने उनसे प्रश्न करना प्रारंभ किया तो उन लोगों ने कहा कि हम बौद्ध हैं। फिर फाहियान ने कहा यहा क्या करने आए थे। उन दोनो ने कहा कि भगवान को चढ़ाने के लिये सफतालू ढूंढ रहे थे। थोड़ी देर की पूछ ताछ कर यह निश्चय हुआ कि वे लोग सिगचाव के अंतर्गत 'चांगकांग' प्रदेश की सीमा पर हैं। यह बात सुनते ही सारे व्यापारी फड़क उठे, रुपया और माल मँगा

कर चांगकांग प्रदेशाधिप के पास भेट लेकर अपने आदमी भेजने लगे।

उस समय उस प्रदेश का शासक 'लेए' बड़ा दृढ़ बौद्धधर्मी था। उसने ज्योंही यह सुना कि एक श्रमण हिंदुस्तान गया था और वहां से अनेक धर्मग्रंथो की प्रतियां लेकर नाव पर आया है, वह अपने संरक्षकों को साथ लिए बंदर पर आया और उसने बड़े आदर से फाहियान का स्वागत कर धर्मपुस्तको और चित्रो का दर्शन किया और फाहियान को पुस्तकों और चित्रों समेत अपने साथ अपने शासन स्थान को ले गया।

व्यापारी लोग तो वहां से यागचाव की ओर लौटे, और फाहियान सिंगचाव मे वहां के शासक 'लेए' का अतिथि बना। वहां फाहियान को शासक के अनुरोध से साल भर तक रुक जाना पडा, यद्यपि फाहियान बहुत चाहता था कि 'चांगगान' को चला जाय। चागगान के भिक्षुओ से बिछुडे हुए उसे पंद्रह वर्ष हो गए थे, वह उन्हे मिलने के लिये आतुर होरहा था पर उन ग्रंथों का अनुवाद करना भी अत्यत आवश्यक काम था। निदान फाहियान 'सिंगचाव' से विदा हो दक्षिण प्रांत की ओर उतरा। दक्षिण प्रांत के पूर्वीय भाग मे "नानकिन" पूर्वी शीन राज्य की राजधानी था। वहां उस समय भारतवर्ष का एक महा विद्वान श्रमण बुद्धभद्र रहता था। वहां रहकर फाहियान ने अनेक पुस्तको का अनुवाद, जिन्हे वह भारतवर्ष से ले गया था, चीनी

भाषा मे किया। वह 'चांगगान' प्रदेश को जहां से उसने अपनी यात्रा आरंभ की थी नही लौट सका। 'नानकिन' मे उसने अपने अनुवाद के काम को जहां तक कर पाया था किया और शेष कर ही रहा था कि वह "किंगचाव" गया और वहां शीन के संघाराम मे ८८ वर्ष की अवस्था मे इस संसार से परलोक को सिधार गया।

फाहियान के यात्रा-विवरण के पढ़ने से यह जान पड़ता है कि यह यात्रा-विवरण उसके हाथ का लिखा नहीं है। चीन देश मे पहुँच कर उसने अपनी यात्रा के सारे विवरणों को अपने किसी मित्र से कहा, जिसने सारी बातो को अपने स्मरण से पीछे लिखा। यही कारण है कि कितनी जगहो पर दिशा और परिमाण का अंतर है। इतना ही नही कितनी ही नदियों का जिसे उसने पार किया होगा उल्लेख तक नही मिलता। चालीसवे पर्व के इस वाक्य से कि 'अतः यात्रा का विवरण लिख दिया कि पढ़नेवाले जानें कि उसने क्या क्या सुना और देखा' कितने ही लोग यह अर्थ निकालते हैं कि उसने अपनी यात्रा का विवरण स्वयं लिखा और लेगी ने इसका अनुवाद यह किया है कि "and therefore he wrote out an account of his experience that worthy readers might share with him what he had heard and seen" पर चीनी भाषा के मूल मे कोई ऐसा चिह्न नहीं है जिससे यह अर्थ निकाल सकें। वहां कोई ऐसा सर्वनाम ही नहीं है जिससे यह आशय

ले सकें कि 'उसने' लिखा वा 'अपने' अनुभव का विवरण लिखा। सारे का सारा वाक्य सर्वनाम-रहित है। इसका सिवाय इसके दूसरा अभिप्राय हो ही नही सकता कि लेखक ने यह यात्राविवरण इसलिये लिखा कि पाठक लोग यह जाने कि उसने क्या देखा और क्या सुना।

इस विवरण को अति संक्षिप्त देखकर कितने अनुवादकों को यह सूझी है कि उसके हाथ का लिखा हुआ कोई इससे पृथक् और परिपूर्ण विवरण है और उसके ढूंढ़ने के लिये उन्होने बहुत बड़ा प्रयास भी किया है। स्वयं लेगी महोदय को भी यही शंका थी कि कोई दूसरा पूरा यात्रा-विवरण उसका होगा और अपनी भूमिका मे उन्होंने बहुत कुछ छान बीन की है। वे लिखते हैं कि—

" It is added that there is another larger work giving an account of his travels within various countries... ..If there were ever another and larger account of Fa-hien's travels than the narrative of which a translation is now given, it has long ceased to be in existence."

सारांश यह है कि लेगी कहते हैं कि एक और बृहत् ग्रंथ है जिसमे भिन्न भिन्न जनपदो मे उसकी यात्रा का विवरण है. यदि कोई और बड़ा ग्रंथ फाहियान के यात्रा-विवरण का इसके अतिरिक्त, जिसका यह अनुवाद है, रहा होगा तो वह

बहुत दिनों से लुप्तप्राय हो गया"। आगे चलकर लेगी साहब सुइ वंश (५८६—६१८) के सूचीपत्र का प्रतीक देते हुए लिखते हैं कि उसमे फाहियान का नाम चार बार आया है, एक तो अंत के खंड मे पृष्ठ २२ पर उसकी यात्रा का प्रतीक देकर किंगलिंग (नानकिंग का दूसरा नाम है) मे बुद्धभद्र के साथ रहकर उसका अनुवाद करने का वर्णन है । फिर दूसरे खंड (पृष्ठ १५) मे "बौद्ध जनपदों का विवरण" लिखा है और टीका मे यह लिखा है कि यह श्रमण फाहियान का ग्रंथ है। फिर पृष्ठ १३ मे "फाहियान का विवरण" दो जिल्दों मे और पुन: "फाहियान की यात्रा का विवरण, एक जिल्द में" लिखा है। लेगी साहब लिखते हैं कि "ये तीनों संभवत: एक ही पुस्तक की पृथक् पृथक् प्रतियों का ही उल्लेख हो सकता है।" प्रथम, और अंत के दोनों एक ही सूची के अलग अलग खंड हैं। आगे लेगी साहब ने अपनी प्रति की प्राचीनता प्रमाणित करने के लिये अनेक सूचियों के प्रतीकों को उद्धृत किया है।

उपरोक्त बातों से यह स्पष्ट है कि वह पुस्तक जिसमे फाहियान का बुद्धभद्र के साथ किंगलिंग मे अनुवाद करने का वर्णन है संभवत: यह नहीं है। यह भी सभव है कि वह इसी का उत्तरार्द्ध रहा हो अथवा कोई बृहत् ग्रथ हो, हम बिना देखे निश्चयपूर्वक कुछ नहीं कह सकते, पर इसमे तो बुद्धभद्र के साथ नानकिंग (किंगलिग) मे अनुवाद का कुछ भी उल्लेख नहीं है। हमे तो वर्तमान प्रति ही के आधार पर विचार करना है।

आधुनिक रीति से विचार करने पर तो हम यह कह सकते हैं कि यह फाहियान का लिखा नहीं है। पर जब हम पूर्व के वा प्राचीन लिखे अन्य ग्रंथों पर दृष्टिपात करते हैं तो हम यह कहने पर बाध्य होते हैं कि पुरा-काल मे समस्त पूर्वीय देशों में लिखने की यही परिपाटी प्रचलित थी। भारतवर्ष के अति प्राचीन ग्रंथो को जाने दीजिए, कौटिल्य के अर्थशास्त्र और राज-शेखर की काव्यमीमांसा ही को लीजिए जिनका उन्हीं के हाथों का होना निर्विवाद लोग मानते हैं पर उनकी रचना को देख कर कोई यह नहीं कह सकता है कि ये ग्रथ कौटिल्य वा राजशेखर के लिखे हुए हैं। इसी प्रकार यद्यपि रचना से यह जान पड़ता है कि यह ग्रंथ फाहियान का लिखा नहीं है तो भी यह मानते हुए कि प्राचीन काल मे लेखकों की यही परिपाटी थी यह मानने मे कुछ भी सकोच नहीं है कि चालीसवे पर्व के अंत तक सारा ग्रंथ फाहियान ने चीन देश मे पहुँच कर लिखा कि "पढ़नेवाले जानें कि उसने क्या क्या सुना और देखा"।

यद्यपि फाहियान धार्मिक यात्रा करने और धर्म ग्रंथो का सग्रह करने के उद्देश से आया था और इसीलिये उसने इतने कष्ट उठाए पर फिर भी उसने अपने समय के आचार व्यवहार का जो उसने भिक्षुसंघ मे देखा था और देशवासियों की अवस्था का अच्छा चित्र खींचा है। विदेशी यात्रियो के लेखो से किसी देश के इतिहास की सत्यता को जॉचना अच्छी बात

है पर उन्हे अक्षरशः सत्य मानना कभी ठीक नही है। यही कारण है कि श्रावस्ती, कुशनगर और लुंविनी आदि के स्थानों का निर्णय हो जाने पर भी स्मिथ सरीखे ऐतिहासिकों को जो वर्षों फैजावाद, वस्ती और गोरखपुर मे कलक्टरी और कमिश्नरी आदि पदों पर रह चुके थे प्रायः स्वय भ्रम मे पड़ना और अन्यों को भ्रम मे डालना पड़ा है। उन्हे फुहरर सदृश सत्यवादी विद्वान् तक पर जाल करने का कलंक लगाना पड़ा है।

यहां हम फाहियान के मार्ग का पुनः दिग्दर्शन करा देना उचित समझते हैं जिससे इस वात का पढ़नेवालों को सामान्यतया ज्ञान हो जाय कि उसने कहां से अपनी यात्रा का आरंभ किया और किन किन जनपदों से होकर वह भारतवर्ष में आया तथा किस मार्ग से होकर चीन को लौट गया।

फाहियान 'चांगगान' से ४०० ई० में विनय पिटक की खोज मे भारतवर्ष की ओर चला। वह 'लंग' से होकर 'कीनकवी' मे आया और वहां उसने वर्षावास किया। वहां से यांगलो पर्वत पार कर 'चागयीः' मे आया। वहां उस समय विप्लव मचा था। वही वर्ष भर रुक गया। विप्लव शांत हो जाने पर 'तुनह्वांग' मे आया और वहां के शासक की सहायता से 'गोवी' पार कर १७ दिन मे 'शेनशेन' मे आया। 'शेनशेन' प्रदेश से पंद्रह दिन मे 'ऊए' पहुँचा। 'शेनशेन' लोवनार के आस पास और 'ऊए' तुरकिस्तान के किनारे था। ये दोनों प्रदेश अव गोवी के मरुस्थल के

नीचे हैं, और लोवनार के आस पास सौ दो सौ मील के भीतर थे। अधिक संभव है कि वे नगर जहां पर कई बार यात्रा करने से युरोपीय और रूसी यात्रियों को वहुमूल्य प्राचीन प्रतियां मिली हैं इन्हीं जनपदों के रहे हों जो पीछे मरु-भूमि की बालुका से आच्छादित होकर सदा के लिये संसार से मिट गए।

'ऊए' से फाहियान 'खुतन' आया और वहा की रथयात्रा देख २५ दिन मे 'जीहो' और 'जीहो' से ४ दिन मे सुंगलिग पहुँच पर्वत पार कर 'यूह्वे' पहुँचा। 'जीहो' और 'यूह्वे' का पता यद्यपि युरोपीय विद्वानो को अब तक नही चला है पर ये दोनो प्रदेश सीहून और जीहून नदी के किनारे के प्रदेश हैं जहां इन दोनों नदियों के मध्य एक छोटी पहाड़ी है।

'यूह्वे' वा जीहून के किनारे से फाहियान दक्षिण-पूर्व दिशा मे चला और पच्चीस दिन मे पर्वतों से होकर 'कीचा' मे पहुँचा। 'कीचा' को कोई कोई कश्मीर वा स्कर्दू लिखते हैं पर यह वही प्रदेश जान पड़ता है जो कराकोरम और सिंधुनद के मध्य है। वाल्मीकीय रामायण मे इसीको 'कैकय' जनपद और इसकी राजधानी को पर्वतों से परिवेष्टित होने के कारण 'गिरिव्रज' लिखा है।

कीचा वा कैकय से फाहियान पच परिषद देखकर 'दरद' मे आया। दरद कैकय के पश्चिम में पडता था। एक मास मार्ग में लगा। समय पर भी विचार करने से यही ठीक जान

पड़ता है कि वह 'यूह्वे' से पूर्व-दक्षिण गया और फिर वहां से पश्चिम ओर फिरा। 'यूह्वे' से कीचा जाने मे २५ दिन और कीचा से दरद आने मे एक मास लगे। दोनों मार्ग पहाड़ी और कठिन थे। दरद को ही औरो ने 'दरदिस्तान लिखा है।

दरद से पद्रह दिन और चलकर फाहियान एक झूले पर से होकर 'उद्यान' मे आया। अंग्रेजी अनुवादकों ने इसे 'सिंधु' लिखा है। उनके भ्रम के लिये हेतु भी है क्योंकि चौदहवे पर्व के अंत मे भी वही चिह्न हैं। वहां सिवाय सिंधु के दूसरी नदी नहीं पड़ती। ये दो चिह्न हैं जिनमे पहले का अर्थ ऊपर पुल वा झूला और दूसरे का अर्थ नदी है। इनमे दूसरा संकेत पंद्रहवे पर्व के आदि मे भी है। सिंधु के लिये फाहियान ने कोई चिह्न व्यवहार नही किया है पर उस नद के लिये वही चिह्न व्यवहृत होता है जो हिंदुस्तान के लिये होता है। सिंधु के कारण हिंदुस्तान को चीनवाले सिंतू कहते आए हैं। पर उन दोनों संकेतों का अभिप्राय जो दरद प्रदेश से उद्यान आते समय वा पोनो से पीतो आते समय पर्व ७ और १४ मे किए गए हैं केवल नदी पार करने का झूला ही है। यही अर्थ डाक्टर ओ० फ्रैंक (O. Frank) ने इंडियन एटीकेरी मे भी किया है— Hintu—hanging bridge। यही मत समीचीन जान पड़ता है। उच्चारणसाम्य से ही अनुवादकों और टीकाकारों को भ्रम मे पड़ना पडा है।

उद्यान मे पहुँच कर फाहियान वहां से 'सुहोतो' (सुश्रात) गया। वहां से गांधार, गांधार से तक्षशिला और तक्षशिला से पेशावर आया। पेशावर से 'नगार' गया और 'नगार' मे 'हूकिग' के देहांत हो जाने पर 'पोनो' होकर फिर एक झूले वा पुल पर से उतर कर 'पीतो' आया।

'पीतो' से दक्षिण-पूर्व चलकर मथुरा आया, फिर मथुरा से यमुना के किनारे चलकर १८ योजन पर 'संकाश्य' नगर मिला। सकाश्य नगर मे वर्षा बिताकर कान्यकुब्ज नगर आया और कान्यकुब्ज से गंगा पार करके 'आले' गांव मे जो कान्यकुब्ज से तीन योजन पर था, गया।

आले से दस योजन पर 'सांखे' दक्षिण-पूर्व मे पडा। यह 'सांखे' यात्रा-विवरण मिलाने से सुयेनच्वांग का 'विशाखा' जान पड़ता है। संभवत. यह साकेत का ही विकृत नाम हो, ऐसा अनुमान होता है।

'सांखे' से आठ योजन पर कौशल की राजधानी श्रावस्ती मे गया। श्रावस्ती से कपिलवस्तु की ओर गया और लुंबिनी कानन का दर्शन किया। लुंबिनी बुद्धदेव का जन्मस्थान है और नेपाल की तराई मे भगवानपुर के पास है।

लुंबिनी से रामस्तूप होते हुए कुशनगर वा कसया गया और कसया से वैशाली पहुँचा। वैशाली से पाटलिपुत्र और वहां से राजगृह गया और गृध्रकूट और शतपर्णी गुहा होता हुआ बुद्धगया मे पहुँचा।

बुद्धगया से गरुड़पाद पर्वत का दर्शन कर अनालय वा 'आरण्य' से जो बलिया के पास था, होता हुआ वाराणसी आया। वाराणसी मे ऋषिपत्तन मृगदाव के 'धर्म-चक्र-प्रवर्तन' स्तूप का दर्शन कर पाटलिपुत्र लौट गया और वहां तीन वर्ष रहकर उसने अनेक पुस्तकों का संग्रह किया और संस्कृत विद्या का अध्ययन किया।

पाटलिपुत्र से फाहियान अट्ठारह योजन चलकर चंपा गया। चपा अब भागलपुर जिले मे है और चंपा नगरी कहलाती है। चंपा से वह ताम्रलिप्त गया जिसे अब तमलुक कहते हैं। वहां दो वर्ष तक रह गया और पुस्तकों और चित्रो की प्रतिलिपि की।

तमलुक से फाहियान एक व्यापारी नौका पर सवार होकर सिंहल मे गया और वहां दो वर्ष तक रहा और अनेक पुस्तको की प्रतिलिपि की।

सिंहल से फाहियान जावा द्वीप गया। वहां पॉच महीने पड़ा रह गया। फिर एक और नौका पर चढकर चीन को चला। तीन महीने के लगभग तूफान से भटकती हुई नाव चांगक्वांग के किनारे लगी। वहां के शासक 'लेए' ने फाहियान का स्वागत किया और वह उसे अपने शासन-स्थान 'सिगचाव' मे ले गया। 'सिंगचाव' मे फाहियान एक वर्ष रहा, फिर दक्षिण को चलकर 'नानकिंग' गया और वहां अपने अभीष्ट ग्रथो का अनुवाद करने लगा।

इस यात्रा मे फाहियान के शब्द मे ही वह ६ वर्षों मे मध्य देश पहुँचा, ६ वर्ष वहां फिरा, लौटकर ३ वर्ष मे सिंगचाव पहुँचा, ३० से कुछ ही कम जनपदों मे भ्रमण किया" सब मिलकर उसको १५ वर्ष लगे।

फाहियान के स्वभाव और प्रकृति के विषय मे उपसहार के लेखक के, जो कोई उसका मित्र वा भक्त जान पड़ता है, ये शब्द मात्र पर्य्याप्त हैं कि "वह नम्र और सुशील था। जब से इस बड़े धर्म का पूर्व के देश मे प्रचार हुआ कोई भी निरपेक्ष, धर्म का जिज्ञासु आचार्य्य सा नही हुआ। अत मैं तो जान गया कि सत्य के प्रभाव को कोई रोक नही सकता, चाहे वह जितना बड़ा हो, वह पार ही कर जाता है। मानसिक बल जो काम चाहे पूरा करने मे चूकता नहीं। ऐसे कार्य्यों का सपादन, आवश्यक को भूलने और भूले हुए को स्मरण करने से होता है"।

S-W ९८
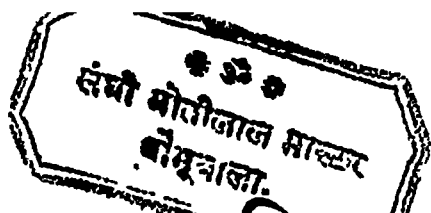
फाहियान का यात्रा-विवरण।

पहला पर्व

यात्रारंभ

फाहियान चांगगान * मे रहता था। विनयपिटक के ग्रंथो की अंगभंगता और अपूर्णता पर उसे दु:ख हुआ और ह्वांगचे † काल के द्वितीय वत्सर मे उसने यात्रा का संकल्प किया। ह्वेकिंग

---

*- शेन-से प्रदेश की प्राचीन राजधानी। यह अब शेगन प्रात का एक विभाग है। ईसा के जन्म के पूर्व २०२ वर्ष से २४ वीं ईसवी तक यह हान राजाओ के समय में राजधानी था। फाहियान के समय में यद्यपि चीन की राजधानी नानकिंग थी फिर भी चागगान चीन देश के तीन प्रधान राज्यों मे माना जाता था।

† ह्वांगचे काल सन् ३९९ से ४१४ तक के समय का नाम था। अपर चीन के राजकुमार यावहिंग ने अपने शासनकाल का नाम ह्वांगचे रखा था। वह पद्रह वर्ष तक शासक रहा। उसी के शासनकाल के दूसरे वर्ष फाहियान ने अपनी यात्रा आरंभ की थी। लेगी साहेब का कथन है कि महास्थविरों की आत्मचर्य्या में लिखा है कि फाहियान पूर्वीय चीन के महाराज लांगगन के राजत्वकाल में तीसरे वर्ष यात्रा पर निकला था। बील के अतिरिक्त प्राय: सभी अनुवादको का यही मत है कि फाहियान ने सन् ३९९ में अपनी यात्रा आरंभ की थी।

तावच्चिग, ह्वेयिंग और ह्वेवी के साथ यह निश्चय किया कि हिंदुस्तान चलकर विनयपिटक की प्रतियों की खोज करें।

चांगगान से चलकर लंग * से होकर वे कीनकी † के जनपद ‡ मे पहुँचे और ‡‡ वर्षा के लिये ठहरे। वर्षा बिताकर वे नवतन § के जनपद मे गए और यागलो पर्वत पार कर

---

* शेनसे के पश्चिमीय और कानसुः के पूर्वीय भाग मिलकर उस समय लग प्रदेश के नाम से प्रख्यात थे।

† यह पश्चिमीय चीन का दूसरा राजा था। उसकी राजधानी कानसु देश के लानचाउ प्रांत में थी। यह सीनपे जाति का था और उसका वंश केयेःफू कहलाता था। उस वंश का पहला राजा कोजिन था और चीन के महाराज ने सन् ३८५ में उसे नियत किया था। कोजिन के मर जाने पर कीनक्वी ३८८ में उसके स्थान पर पश्चिमी चीन का शासक हुआ और सन् ३९८ में वहा का राजा बन बैठा।

‡ फाहियान ने 'जनपद' का नाम अपनी यात्रा में तीन प्रकार से रखा है—१—शासक के नाम पर, २—नदी के नाम पर, ३—प्रचलित नाम।

‡‡ बर्म्मा आदि के भिक्षु वर्षा ऋतु मे तीन मास एक ही स्थान पर रहते है।

§ लेगी साहेब का मत है कि नवतन दक्षिण लियांग के राजसिंहासन पर सन् ४०२ में बैठा था। उस समय उसका भाई ले-लू-कूः वहां का अधिपति था। नवतन लियांग का तीसरा राजा था। पर अन्य अनुवादकों का मत है कि नवतन पीतन के पश्चिमांश में होसा प्रदेश का शासक था।

चांगयीः * के नाके पर पहुँचे । चांगयीः मे अशांति फैली थी । मार्ग से होकर जाना असंभव था । चांगयीः के अधिपति ने बड़ी आवभगत की और रोक रखा और दानपति† बना ।

यहां चेयन, ह्वेकीन, सांगसाव, पावयुन और सांगकिंग से भेट हुई । ये लोग भी वही जा रहे थे । उनके साथ वहां वर्षा विताकर तुनह्वांग गए‡ । इसका प्राचीर पूर्व-पश्चिम ८० ली और उत्तर-दक्षिण ४० ली लंबा चौड़ा है । यहां कुछ दिन अधिक एक मास रहे । फाहियान आदि चार जन एक अगुआ दूत § के साथ आगे चले । पावयुन आदि का साथ वही छूट गया ।

---

* यह स्थान कान-सु देश के कानचाउ प्रात में है । बील ने इसे military station और लेगी ने emporium लिखा है । वास्तव में यह एक नाका है जहा होकर लोग एक देश से दूसरे देश में व्यापार की वस्तु ले जाते है । यह लांगचाउ के उत्तर-पश्चिम में चीन की दीवार के पास है ।

† दान महायान के छ पारमिता में से एक है । दान भवसागर के सतरण और निर्वाण का हेतु माना गया है । दान का इतना महत्त्व है कि स्वयं बुद्धदेव ने अनेक जन्मों में विविध दान दिए है यहां तक कि उन्होने अपना सिर देह आदि तक दे दिए थे ।

‡ कानसु . प्रदेश के गानसे प्रांत का एक विभाग । यह चीन की दीवार के वाहर पश्चिम ओर है ।

§ संभव है कि तुनह्वांग के शासक ने मरुभूमि मे राह बताने के लिये फाहियान के साथ किसी मनुष्य को कर दिया हो । उसी को उसने दूत लिखा है ।

तुनह्वांग के शासक लेहाव* ने मरुभूमि† पार करने के लिये सामग्री का सुभीता कर दिया। सुना कि मरुभूमि मे राक्षस फिरा करते हैं, गर्म हवा चलती है, वहां जाकर उनसे कोई बच कर नही आता। न ऊपर कोई चिड़िया उड़ती है और न नीचे कोई जतु दीख पड़ता है। आँख उठाकर जिधर देखो कही चारों ओर जाने का मार्ग नहीं सूझता। बहुत ध्यान देने पर भी कोई मार्ग नही मिलता। हॉ मुर्दों की सूखी हड्डियो के चिह्न भले ही हैं।

दूसरा पर्व

—:o:—

शेनशेन और ऊए

सत्रह दिन मे लगभग १५०० ली चल कर शेनशेन‡ जनपद मे पहुँचे। यह पहाड़ी प्रदेश है। भूमि यहां की पथरीली और

---

* यह उस समय तुनह्वांग का शासक था। उत्तरीय लियंग के राजा ने इसे ४०० ईसवी में तुनह्वाग के शासक के पद पर नियुक्त किया था। यह बडा विद्वान, दयालु और प्रबधकुशल था। बढते बढते यह पश्चिमीय लियंग का अधिपति हो गया था। इसकी मृत्यु ४१७ मे हुई थी।

† चीनी भाषा के मूल मे इसे बालू की नदी लिखा है। यह मरुभूमि गोबी की मरुभूमि थी।

‡ यह जनपद लोब वा लोपनार ह्रद के दक्षिण किनारे पर था।

बनजर है। साधारण अधिवासी मोटे वस्त्र पहनते हैं जैसे हमारे ह्वान देश मे (पहिना जाता है)। कोई पश्मीना और कोई कंबल पहनता है, केवल इतना ही अंतर है। इस देश के राजा का धर्म हमारा ही है। यहां लगभग चार हजार से अधिक श्रमण रहते हैं। सब के सब हीनयानानुयायी हैं। इधर के देश के सब लोग क्या गृही क्या त्यागी भारतीय (हिंदू) आचार और नियम का पालन करते हैं, अंतर इतना ही है कि एक सामान्य और दूसरे विशेष। यहां से पश्चिम जिन जिन देशों मे गए सभी देशों मे ऐसा ही पाया। भेद इतना ही था कि देश देश की भाषा न्यारी न्यारी और अनोखी थी। पर सब गृहत्यागी विरक्त भारतीय ग्रंथों और भारतीय भाषा का अध्ययन करते पाए गए। यहां महीना दिन रहे।

यहां से उत्तर-पश्चिम की ओर पंद्रह दिन चले। ऊए * देश मे पहुँचे। यहा चार हजार से अधिक श्रमण रहते हैं। सब के सब हीनयानानुयायी हैं। इनके आचार-नियम कठिन हैं। उस पर वे दृढ़व्रती हैं। चीन देश के श्रमणो मे उनके पालन की क्षमता नहीं है। फुकुंग-सन † की उदारता से फाहि-

---

* इस जनपद का अब तक निश्चय नहीं हुआ है। वाटर का मत है कि यह या तो काशर है वा खरशर और कुश्वर के मध्य कहीं रहा होगा। सुगयुन और हुइसंग नाम के दो यात्री इसी देश की रानी की आज्ञा से छठी शताब्दी में भारत की ओर आए थे और उद्यान काबुल पेशावर आदि होकर वापस गए थे।

† चीनी भाषा में 'फु' उद्देशिक को कहते हैं।

यान यहां दो महीने से अधिक रह सका। यहीं उसे पावयुन आदि आकर मिल गए। ऊए के अधिवासियों ने सुजनता और उदारता परित्याग कर विदेशियों से क्षुद्रता का व्यवहार किया। इससे चेयुन, ह्वेकीन और ह्वीई कावचांग* चले गए। उन्हे वैसे जाने मे सुभीता जान पड़ा। फाहियान फू (उद्देशिक) की उदारता से अन्य साथियों समेत दक्षिण-पश्चिम की ओर सीधे जाने मे समर्थ हुआ। मार्ग मे जनशून्य देश मिले। नदी उतरने मे और मार्ग मे चलने मे जो क्लेश और दुःख उठाने पड़े किसी ने उठाए न होंगे। एक महीना पॉच दिन मे योतन (खुतन) पहुँचे।

तीसरा पर्व

—.०:—

खुतन

यह जनपद सुखप्रद और सम्पन्न है। जनसंख्या प्रभूत और प्रवृद्ध है। अधिवासी सभी धार्मिक हैं। मिलकर सब झुंड के झुंड धार्मिक संगीत का आनद लूटते हैं। कई अयुत श्रमण यहां रहते हैं। जनपद मे अधिवासियों के घर तारों की भांति पृथक् पृथक् हैं। घर घर के द्वार पर छोटे छोटे स्तूप हैं। छोटे से छोटा स्तूप बीस हाथ से अधिक ऊँचा होगा। चारों ओर

* ओईघर्स प्रदेश। वर्तमान तुर्फान वा तंगुत प्रांत के आसपास था।

भिक्षुओं के लिये कोठरियां वनी हैं। अतिथि भिक्षु जो आते हैं इन्हींमें ठहराए जाते हैं। उनकी आवश्यकताएँ पूरी की जाती हैं।

जनपद के अधिपति ने फाहियान आदि को एक संघाराम मे सुखपूर्वक ठहराया। उस संघाराम का नाम गोमती संघाराम था। महायान का विहार था। उसमे तीन हजार भिक्षु रहते थे। सब के सब महायानानुयायी थे। घंटा बजने पर सब भांडार में खाने जाते थे। वहां उनका भाव अत्यंत गंभीर रहता था। पाँती की पाँती यथास्थान वैठते थे। सब चुप चाप—पात्रों के शब्द भी नहीं सुनाई पड़ते थे। ये भिक्षु भांडार मे मौन रहते थे। आवश्यकता पड़ने पर हाथ से संकेत मात्र करते थे।

ह्वेंकिंग तावचिंग और ह्वेता. * पहले ही कीचा † जनपद की ओर चले गए। पर फाहियान आदि रथयात्रा देखने के लिये तीन महीना रुक गए। इस देश मे चार ‡ बड़े संघाराम हैं, छोटे छोटों की तो गिनती ही नहीं। चौथे महीने की पहली तिथि से नगर मे सड़कों पर झाड़ू वहारू होने लगती है, पानी छिड़का जाता है, गली गली सजावट होती है। नगर के द्वार पर

---

* यह अनोखा नाम आया है। संभव है कि यिंग के स्थान में ता: हो गया हो।

† चौथे पर्व मे देखो।

‡ लेगी लिखते हैं कि चीन के संस्करण में चौदह है।

एक बड़ा तम्बू खड़ा किया जाता है। सब प्रकार की सजावट होती है। फिर राजा और अपनी परिचारिकाओं समेत रानी वहां पधारते हैं।

गोमती विहार के भिक्षु महायान के अनुयायी हैं। महाराज प्रतिष्ठा करते हैं। उनकी रथयात्रा पहले निकलती है। नगर से तीन चार ली पर भगवान का रथ चार पहिये का बनाया जाता है। वह तीस हाथ ऊँचा होता है और चलता प्रासाद जान पड़ता है। सप्तरत्न के तोरण लगाए जाते हैं, रेशम की ध्वजा और चादनी से सुसज्जित किया जाता है। भगवान की मूर्ति रथ मे पधराई जाती है। दोनों ओर दो बोधिसत्व रहते हैं। सब देवता साथ साथ चलते हैं। सब मूर्तियां सोने चादी की बनी होती हैं। ऊपर ध्वजा उडती है। जब रथ नगर के द्वार से सौ पग पर पहुँचता है, राजा अपना मुकुट उतारता है, नया वस्त्र धारण करता है और हाथ मे फूल और धूप लिए नगे पॉव नगर से रथ की अगवानी को जाता है। परिचारक पंक्तिबद्ध दोनो ओर रहते हैं। राजा साष्टांग दंडवत कर फूल चढ़ाता है और धूप देता है। जब रथ नगर मे प्रवेश करता है, राजद्वार के दरवाजे पर रानी अपनी परिचारिकाओं सहित बैठकर ऊपर से फूल बरसाती है। भूमि पर ढेर के ढेर फूल गिरते हैं। उत्सव बड़े समारोह से मनाया जाता है। प्रत्येक संघाराम के अलग अलग रथ होते हैं। उनकी रथयात्रा के लिये एक एक दिन नियत है। रथयात्रा महीने की पहली तिथि को

आदि जीहो * जनपद की ओर चले। मार्ग मे २५ दिन चलकर उस जनपद मे पहुँचे। जनपद का अधिपति बड़ा धर्मिष्ठ है। एक सहस्र से अधिक भिक्षु हैं, सब महायान के अनुयायी हैं। यहां पंद्रह दिन रहे, फिर यहां से दक्षिण चार दिन चले और सुगलिंग† पर्वत मे होकर यूह्वे ‡ जनपद मे पहुँचे। वर्षा विताई। विश्राम कर के पहाड़ मे २५ दिन चल कर कीचा § जनपद मे पहुँचे। ह्वेकिंग आदि यहां फिर मिले।

---

* इस प्रदेश का अब तक ठीक पता युरोप के विद्वानों को नहीं चला है। बील साहेब का मत है कि यह यारकंद है। यारकंद खुतन से उत्तर-पश्चिम ओर है। वाटर साहेब का अनुमान है कि यह 'ताशकुर्गन' ही है।

† हिमालय और उसके विस्तार कराकोरम हिंदुकुश आदि जो पामीर तक फैले है। यहां पामीर की ऊँची भूमि जो सीहून और जीहून के मध्य है।

‡ इस जनपद का भी पता अब तक नहीं चला है। वाटर साहेब का अनुमान है कि यह वर्तमान 'अकताश' है। सुंगलिंग पर्वत पर किसी अँगरेजी अनुवादक ने कुछ टिप्पणी नही लिखी है बिलकुल साफ छोड़ दिया है मानो वह चीन आदि देशो की भाति सामान्य बोधगम्य स्थान है। लेगी ने सुंगलिंग शब्द का अनुवाद Onion mountain अर्थात् प्याज का पर्वत भले ही कर डाला है।

§ इसका भी ठीक पता अब तक युरोपीय विद्वानों को नहीं लगा है। रेमुसट ने इसे कश्मीर, क्लाप्रोथ ने इस्कर्दू, बील ने करचाउ, ईटेल ने खस और लेगी ने लदाख वा उसके आसपास का कोई प्रसिद्ध स्थान लिखा है।

पाँचवाँ पर्व

—:०:—

कीचा वा ककय

इस समय इस जनपद के अधिपति ने पंच-परिषद आमंत्रित किया था। पंच-परिषद पाँचवे वर्ष के अधिवेशन को कहते हैं। अधिवेशन होता है तो चारों ओर के श्रमण मेघ की भाति आते हैं। भिक्षुओं के बैठने का स्थान सजाया जाता है, रेशम की ध्वजा चांदनी लगती है, आसन के पीछे सोने चांदी के पद्म के फूल लगाए जाते हैं, साफ सुथरा आसन बिछाया जाता है। श्रमण उन आसनों पर विराजते हैं। राजा अपने बंधुओं और मंत्रियों सहित उनकी यथाविधि पूजा करता है। यह प्रायः वसंत ऋतु के पहले, दूसरे वा तीसरे महीने मे होता है। राजा अधिवेशन आमंत्रित करता है। वह अपने बंधुओं और मन्त्रियों को विविध भांति की पूजा करने के लिये प्रोत्साहित करता है। इसमे एक, दो, तीन, पाँच वा सात दिन लग जाते हैं। पूजा हो चुकने पर राजा अपनी सवारी के घोड़े को मँगाता है, लगाम और चार-जामा कसकर (फिर) अपने जनपद के गण्य मान्य मंत्रियों को सवार कराता है। इसके अनंतर वह सफेद ऊनी वस्त्र, भांति

* इस वाक्य का अनुवाद बील ने इस प्रकार किया है 'राजा अपने दूतो की सेना के प्रधानो और प्रधान अमात्यों के पास अपनी सवारी का घोड़ा ले कर उन्हें सवार कराता है और उन्हें अनेक भाति का उपहार देता है।" और लेगी ने यह किया है कि "प्रधान मंत्रियो को घोड़े पर सवार कराता है।" सब ने इन वाक्यों को संदिग्ध और अव्यक्त पाया है।

भांति के बहुमूल्य रत्न, और श्रमणों के व्यवहार योग्य वस्तुओं को लेता है और (अपने) बंधुओ और मन्त्रियों के साथ पुकार पुकार कर भिक्षुसंघ को देता है। श्रमण जब दान पा जाते हैं तब (राजा) श्रमणों से दाम देकर जो जो चाहे ले लेता है।

यह देश पहाड़ी और ठंढा है। सुनते हैं यहां गेहूं के अतिरिक्त और अन्न नही होते। भिक्षुसघ को अग्रहार मिला कि तुषार पड़ने लगा। अत: अब राजा भिक्षुसंघ से अग्रहार पाने के पहले ही गेहूं की उपज के लिये प्रार्थना करता है। इस देश मे बुद्धदेव की एक पीकदान है जो पत्थर की बनी है और बुद्ध-देव के भिक्षापात्र के रग की है। यहां बुद्धदेव का एक दॉत भी है। इस जनपद मे लोगो ने बुद्धदेव के दॉत के लिये स्तूप बना रखा है, वहा एक सहस्र से अधिक हीनयान के भिक्षु रहते हैं। पर्वत के पूर्व के सामान्य लोग मोटा झोटा वस्त्र पहनते हैं जैसे कि हमारे हान देश मे पहना जाता है, पर कोई बारीक पश्मीना, कोई कंबल। श्रमणों का आचार आश्चर्यजनक है, इतना विधि-निषेधात्मक कि वर्णनातीत। यह जनपद सुंग-लिंग पर्वतमाला के मध्य मे है। इस पर्वतमाला से जितना ही आगे बढे वनस्पति, वृक्ष और फल सब विभिन्न मिलते गए, केवल बॉस, विल्व और ईख येही तीन हमारे देश के से होते हैं, यह सुना है।

छठाँ पर्व

—:o:—

तोले वा दरद

यहां से पश्चिम उत्तर हिंदुस्तान की ओर चले। एक महीना राह चलकर सुंगलिंग पर्वतमाला पार की। सुंगलिग पर्वतमाला ग्रीष्म से हेमंत तक तुषारावृत रहती है। उस पर विषधर नाग हैं, वे कुपित होकर विषयुक्त वायु छोड़ते हैं, तुषार गिराते, अंधड चलाते और पत्थर बरसाते हैं। यहां इन आपत्तियों से बचकर दस हज़ार में एक भी नहीं निकल पाता। इस देशवाले इसे हिमालय पर्वत कहते हैं। इस पर्वतमाला को पार कर वे उत्तर हिंदुस्तान मे पहुँचे। सीमा मे पैर रखते ही एक छोटा जनपद मिला। इसका नाम तोले * था। यहां अनेक श्रमण सब हीनयान के अनुयायी हैं। यहां पूर्व काल मे एक अर्हत था। वह अपनी ऋद्धि-साचात्-क्रिया के बल एक चतुर कारु को तुपित स्वर्ग ले गया कि वह मैत्रेय बोधिसत्व की ऊँचाई वर्ण और रूप देख आवे और आकर उनकी लकड़ी की प्रतिमा बना दे। आदि से अंत तक उसे तीन बार देखने के लिये ऐसा करना पड़ा, तब कहीं मूर्ति बन कर तय्यार हुई। उसकी ऊँचाई अस्सी हाथ है और आसन पालथी के एक घुटने से दूसरे तक, आठ हाथ है। उपवसथ के दिन इससे शुभ्र प्रकाश निकलता

---

* इसे दरद कहते हैं। यह प्रदेश सिधुनद के दाहिनी ओर है।

है, सब जनपद के अधिपति इसकी पूजा के लिये होडाहोड़ी मचाते हैं। यह अब तक पूर्ववत् दिखाई पडती है।

सातवाँ पर्व

—:o:—

नदी पार करना

पर्वतमाला के किनारे किनारे दक्षिण-पश्चिम दिशा मे चले, पंद्रह दिन चलते रहे। मार्ग कठिन था, चढ़ाई उतराई अधिक था, किनारा बहुत ढालू पर्वताकार पत्थर की दीवार सा सीधा खड़ा था जिसकी ऊँचाई नीचे से दस हजार हाथ थी। किनारे पर खड़े होने से आँख तिलमिलाती थी। आगे पाँव धरने को जगह न थी, नीचे पानी था जिसे हितु * कहते हैं।

---

* इसका अनुवाद सिधु किया गया है। फाहियान ने इसके पूर्व कहीं सिंधु का उल्लेख नहीं किया है। इसीसे लेगी ने १४ वें पर्व पृष्ठ ४१ नोट ६ मे लिखा है कि "They had crossed the Indus before They had done so, indeed twice first from north to south at Skardo or east of it, and second as described in Ch VII अर्थात् वे पहले सिंधु पार कर चुके थे—दो बार और उतर चुके थे—एक तो स्कर्दो के पास, और फिर जिसका वर्णन पर्व ७ मे है। सुगयुन और हुईसंग के यात्रा-विवरण में भूले का उल्लेख है पर वहा सिधु का नाम नहीं है। डा० ओफ्रैन का मत है कि 'हियन् तू' का अर्थ है hanging bridge वा वह पुल जो अधर मे लटका हो। यहां पर बील,

आगे के लोगो ने यहां पत्थरों को काट कर राह बना दी है— सीढ़ियां बनी हैं—सात सौ सीढ़ियां सब हैं। सीढ़ियों के नीचे रस्सी का झूला है। इसी पर नदी पार करते हैं, नदी का पाट अस्सी पग है। इसका उल्लेख 'क्यूयी'* मे है पर चांगकीन †

और वाटर ने कनिगहम के वर्णन से जो उन्होंने लदाख मे सिंधु के मार्ग का वर्णन किया है निम्नलिखित वाक्यों को उद्धृत किया है। From Skardo to Rangdo and from Rangdo to Makpou-i-Shang-rong, for upwards of two miles, the Indus sweeps sullen and dark through a mighty gorge in the mountains, which for wild sublimity is perhaps unequalled. Rangdo means the country of defiles Between these points the Indus raves from side to side of the gloomy chasm, foaming and chafing with ungovernable fury Yet even in these inaccessible places has daring and ingenious man triumphed over nature The yawning abyss is spanned by frail rope bridges, and the narrow ledges of rock are connected by ladders to form a giddy pathway overhanging the seething cauldron below" सारांश यह है कि स्कर्दो से रोंगडो तक और रोंगडो से माकपोई-शांग-रोंग तक सिंधु नद में बड़े बड़े खड्ड और दर्रे पड़े हैं पर मनुष्यों ने वहा भी तंग दर्रे मे खड्डों पर रस्सी के लटकते हुए पुल वा झूले बना कर राह बना ली है। संभव है कि और नदियो में भी एकाध झूले हो जिनका उल्लेख चीनी यात्रियो ने किया है।

* मूल में 'क्यूयी' पद है जिसका अर्थ है 'राजविस्तार का विवरण' पर लेगी ने 'Records of nine interpreters' अर्थात नौ द्विभाषियों का विवरण लिखा है। ये द्विभाषिए चीनी सेना के साथ पश्चिम देशों पर आक्रमण करते समय आए थे।

† लेगी का कथन है कि हान के महाराज 'वू' के समय मे (१४०—८७ ईसा से पूर्व) चागकीन अमात्य था। वह पहले चीन की सीमा अतिक्रमण कर पश्चिम के देशों में जहा अब तुर्किस्तान है घुसा था। इसी के द्वारा

वा कानयिग * यहां पहुँचे नहीं थे।

सब भिक्षुओ ने फाहियान से पूछा कि बौद्ध धर्म पूर्व मे कब† गया, बता सकते हो। फाहियान ने उत्तर दिया—उस ओर वालो से पूछा था, वे कहते थे कि बाप दादो से सुनते आते हैं कि मैत्रेय बोधिसत्व की मूर्ति स्थापन कर हिंदुस्तान के भिक्षु सूत्र और विनय लेकर नदी पार गए। मूर्ति की स्थापना बुद्धदेव के परिनिर्वाण काल से तीन सौ वर्ष पीछे हुई। उस समय हान देश मे चाव वशी महाराज पिंग ‡ का राज्य था। इस वाक्य से यह प्रमाणित है कि हमारे धर्म का प्रचार इस मूर्ति के स्थापन

---

११५ वर्ष ईसा से पूर्व चीन और अन्य पश्चिम के ३६ राज्यों मे वाणिज्य संबंध प्रतिष्ठित हुआ था। रमुसेट ने चागकीन को हानवंशी 'कूटी' सम्राट् का सेनापति लिखा है और कहा है कि उसने ११२ ई० मे मध्य एशिया मे आक्रमण किया था। लेगी साहेब यह भी लिखते हैं कि चागकीन के विवरणो का अनुवाद बील साहेब ने हानवश की पहली पुस्तक से कर के Anthropological Institute के जर्नल १८८० मे प्रकाशित किया है।

* 'कानथिंग' 'पान-चाव' की ओर से रोम के सम्राट् के पास दूत बन के गया था और कश्यप सागर तक जाके लौट आया था। इसका विवरण हानवश की द्वितीय पुरतक मे है।

† लेगी ने 'कब और कहां' लिखकर नोट मे लिखा है कि सभवत. सिधु पार कर जहा ठहरे।

‡ पिंग का शासन काल ७५०—७१९ तक ईसा के पूर्व मे था। इससे बुद्धदेव का परिनिर्वाण काल ईसा से पूर्व ग्यारहवी शताब्दी निश्चय होता है। पर बुद्धदेव का परिनिर्वाण काल ४८० से ४७० वर्ष ईसा से पूर्व माना जाता है।

(काल) से प्रारंभ हुआ। भगवान मैत्रेय धर्मराज हैं, उसी शाक्य-वंशावतंस ने त्रिरत्न की घोषणा की है और यहां आकर पार के लोगों को धर्मोपदेश किया है। हमे ठीक मालूम है कि अश्रुत-पूर्व धर्म का यह उद्घाटन (प्रचार) किसी मनुष्य का किया नहीं है अतः हान के सम्राट मिंग * का स्वप्न सहेतुक था।

आठवाँ पर्व

—:o:—

उद्यान जनपद

नदी पार करते ही उचांग † (उद्यान) जनपद पहुँचे। यह उद्यान जनपद वस्तुतः उत्तरीय हिंदुस्तान का देश है। लोग मध्य हिंदुस्तान की भाषा बोलते हैं। मध्य हिंदुस्तान कहते हैं मध्य जनपद देश को। सामान्य लोगो का असन वसन मध्य देश के समान ही है। बौद्ध धर्म का प्रभुत्व है। श्रमणों के आवास स्थान को 'संघाराम' कहते हैं। यहां सब पांच सौ संघाराम हैं। सब हीनयानानुयायियों के हैं। अतिथि भिक्षु उनमे आवें तो तीन दिन तक उन्हे भोजन दिया जाता है। तीन दिन बीत जाने पर कह दिया जाता है कि अपना आश्रय ढूँढ़ो।

---

* ६१ ईस्वी में मिंग ने यह स्वप्न देखा था। दे० उपक्रम।

† यह जनपद सुवास्तु प्रदेश मे है और स्वात नदी के दून के उत्तरीय भाग मे है।

जनश्रुति है कि जब बुद्धदेव उत्तर हिंदुस्तान मे आए तो पहले इस जनपद मे पधारे। यहां बुद्धदेव के पद का चिह्न बना है। वह दर्शको की वृत्ति के अनुसार छोटा बड़ा देख पड़ता है। वह अब तक बना है और उसकी सारी बाते आज तक वैसी ही हैं। शिला जिस पर आकर यहा वस्त्र सुखाया था, वह जगह जहां पर नाग को उपदेश दिया था अब तक वैसी ही देख पड़ती है। शिला चौदह हाथ ऊँची, बीस हाथ चौड़ी, और एक ओर चिकनी है।

ह्वेकिंग, ह्वेताः और तावचिंग तीनो यहां से बुद्धदेव की छाया का दर्शन करने नगार जनपद की ओर चले गए। फाहियान आदि उद्यान मे रह गए और वर्षा विताई। वर्षा बीतने पर दक्षिण उतरे और सुहोतो*जनपद मे पहुँचे।

नवाँ पर्व

—:o:—

सुहोतो जनपद

इस देश मे बौद्ध धर्म प्रधान है। पूर्वकाल मे देवराज शक्र ने इस स्थान पर श्येन और कपोत व्याज से एक बोधिसत्व की परीक्षा की थी। उसने अपना मांस काट कर कपोत के बदले

---

* यह स्वात नद के पास नीचे का जनपद था। इसे या स्वात सुआत कहते है। यह स्वात की घाटी का दक्षिणी भाग है।

मे दिया था * । बुद्धदेव ने बोधिज्ञान प्राप्त किया । उन्होंने अपने शिष्यो समेत यात्रा के समय उनसे कहा कि यही स्थान है जहाँ मैंने अपना मांस काट कर कपोत के बदले में दिया था । जनपद-अधिवासियों को इस प्रकार वृत्तांत का ज्ञान हुआ और उन्होने इस जगह स्तूप बनाया और सोने चांदी के पत्र उस पर चढ़ाए ।

दसवाँ पर्व

—:o:—

गांधार

यहां से पूर्व उतर कर पाँच दिन चले । गांधार† जनपद मे पहुँचे । यहां अशोक का राजकुमार धर्मवर्द्धन‡ शासक था । बुद्धदेव ने जब वे बोधिसत्व थे तब इस जनपद मे एक मनुष्य को

---

* यह कथा कपोत वा शिवि-जातक में है । पुराणों मे इसी कथा को शिवि की धर्म-परीक्षा के नाम से लिखा है । देवराज शक्र स्वयं श्येन बन और अग्नि को कपोत बना राजा शिवि के पास आए थे । कपोत राजा शिवि की गोद में गिर पड़ा था । शिवि ने उसकी रक्षा की और कपोत के कहने से अपने शरीर के मांस को काट कर और उसके बराबर तौल कर श्येन को दिया था ।

† यह जनपद बहुत विस्तृत था । सारे अफगानिस्तान का दक्षिण भाग इसमें सम्मिलित था । इटेल ने ढेरी और बंजौर तक इसका विस्तार लिखा है ।

‡ इस नाम के अशोक के किसी कुमार का पता नहीं चलता ।

अपनी आँख का दान दिया था। इस जगह बड़ा स्तूप बना है। उस पर सोने चांदी के पत्र चढे हैं। इस जनपद के अधिवासी सब हीनयान के अनुयायी हैं।

ग्यारहवाँ पर्व

—:o:—

तक्षशिला

यहां से पूर्व ओर सात दिन चल कर तक्षशिरा† नामक जनपद में पहुँचे। तक्षशिरा कहते हैं शिर कटे को। बुद्धदेव ने जब वे बोधिसत्व थे इस जगह अपना शिर एक मनुष्य को दान किया था।‡ इसी कारण इसका ऐसा नाम पड़ा। पूर्व दिशा मे दो दिन चलकर उस स्थान पर पहुँचे जहां बोधिसत्व ने भूखी बाघिन को अपने शरीर का दान दिया था §। दोनो स्थानों

यह भी जातक की कथा है।

† इसे तक्षशिला कहते है। यह रावलपिंडी से २२ मील पर थी। यहा तीन नगरो के खडहर मिलते है, एक भीड टीले के पास, दूसरा सिरकप, और तीसरा सिरसुख। तीनो एक दूसरे के उजडने पर बसे थे। सिरकप भी फाहियान के आने के पूर्व उजड चुका था। उस समय सिरसुख ही में नगर बसा था। यहा की खुदाई से पुरातत्त्व विभाग के काम की अनेक चीजें और अनेक स्तूपो के खडहर मिले है।

‡ बुद्धजातक की एक कथा है।

§ बुद्धजातक का व्याघ्रीजातक।

पर बड़े बड़े स्तूप बने हैं। उन पर बहुमूल्य धातुओं के पत्र चढ़े हैं। राजा मंत्री और जन साधारण उनकी पूजा करते हैं। इन दोनों स्तूपों पर पुष्प और दीप चढ़ानेवालों का कभी तांता नहीं टूटता। इधर के लोग इसे चतुःस्तूप कहते हैं।

बारहवाँ पर्व

—:o:—

पुरुषपुर

गांधार जनपद से दक्षिण ओर चार दिन चलकर पुरुषपुर† जनपद मे पहुँचे। बुद्धदेव ने जब अपने शिष्यों समेत इस देश की यात्रा की तो आनंद से कहा—'मेरे परिनिर्वाण के पीछे इस देश मे कनिष्क नामक राजा होगा। वह यहाँ स्तूप बनवावेगा।' पीछे कनिष्क‡ संसार मे उत्पन्न हुआ। वह सैर करने जा रहा था कि देवराज शक्र, उसे चेतावनी देने के लिये, ग्वालवाल का रूप धारण कर राह में स्तूप बनाने लगे। राजा ने पूछा कि तू क्या बना रहा है? उसने उत्तर दिया कि बुद्धदेव का स्तूप बनाता हूं। राजा ने कहा बहुत अच्छा। यह कह राजा ने भी वालक

---

* कपोतस्तूप, चक्षुस्तूप, और दो ये स्तूप।

† पेशावर।

‡ विंसेंट स्मिथ साहेब ने लिखा है कि कनिष्क १२० ई०, वा १२८ ई० में राजसिंहासन पर बैठा था। कोई कोई इसका १० ई० में सिंहासन पर बैठना मानते हैं।

के छोटे स्तूप के ऊपर चार सौ हाथ ऊँचा और अनेक रत्नो से जटित दूसरा स्तूप बनवा दिया। अनेक स्तूप और मंदिर यात्रा मे देखे पर इतना सुंदर और भव्य कोई और न मिला। कहते हैं कि जंबूद्वीप मे यह स्तूप सब से उत्तम है। राजा ने यह स्तूप उस छोटे स्तूप पर बनवा तो दिया पर वह बड़े स्तूप के दक्षिण ओर तीन हाथ से अधिक ऊँचा निकल आया।

बुद्धदेव का भिक्षापात्र भी इस जनपद मे है। पूर्व काल मे यूशे' * राजा ने बड़ी सेना लेकर इस देश पर आक्रमण किया था और बुद्धदेव के भिक्षापात्र को उठा ले जाना चाहा था। उसने इस जनपद को विजय कर लिया। यूशे' राजा और उसका सेनापति बौद्ध धर्म के माननेवाले थे और भिक्षापात्र ले जाने के लिये उन्होने जाकर बड़ी पूजा की। त्रिरत्न की बड़ी पूजा कर एक बड़ा हाथी सजा कर भिक्षापात्र उस पर रखा गया पर हाथी भूमि पर घुटने के बल बैठ गया और आगे न बढ़ा। फिर चार पहिये की गाड़ी पर भिक्षापात्र को रखा और आठ हाथी जोते पर वे भी उसे न खींच सके। राजा जान गया कि भिक्षा-

---

* यूशे लोग १७३ ई० पू० मे चीन के उत्तर-पश्चिम से निकाले गए थे और १६० ई० में उन्होंने शकों को पराजित किया था। फिर शको ने आक्सस नदी के उत्तर उन्हे भगा दिया। इसके बहुत दिन बाद काडफा-इसस ने यूशे लोगो को एकत्र किया। इटल का मत है कि ये लोग शक और तातार थे और ई० पू० १८० मे हूणों ने उन्हे निकाल दिया था तब आक्सस के पास के देश को बाखतर से १२६ ई० पू० मे उन्होंने छीन लिया और अंत को पंजाब कश्मीर आदि विजय किया।

पात्र को गज रथ पर ले जाने का संयोग नहीं है। वह अत्यंत खिन्न और लज्जित हुआ। निदान उसने वहां एक स्तूप और संघाराम बनवा दिए। रक्षा के लिये रक्षक नियत किया और नाना प्रकार के दान दिए।

यहां सात सौ से अधिक श्रमण होंगे। जब मध्याह्न होता है श्रमण भिक्षापात्र बाहर निकालते हैं और गृहस्थों* के साथ उस की विविध भाँति पूजा करते हैं, तब मध्याह्न का भोजन करते हैं। सायंकाल धूप देने का समय आता है तब फिर ऐसा ही करते हैं। इसमे दो पेक् से अधिक आ सकता है। यह कृष्णवर्ण की प्रधानता लिए अनेक वर्णों का है। इसकी मोटाई एक इंच के पाँचवें हिस्से के बराबर है और कांति बड़ी उज्ज्वल तथा जगमगाती हुई है। चारों तहें अलग अलग दो दो के बीच जोड़सी दिखाई पड़ती हैं। गरीबों के थोड़े फूल चढ़ाने से यह तुरत भर जाता है पर यदि कोई बड़ा धनी बहुत से फूल चढ़ाने की इच्छा करे तो फूलों की सौ सहस्र क्या अयुत टोकरियों से भी नहीं भरता।

'पावयुन' और 'सांगकिंग' ने बुद्धदेव के भिक्षापात्र की पूजा कर लौटना चाहा। ह्वेकिंग, ह्वेता. और ताबचिंग पहले ही नगार की ओर बुद्धदेव की छाया, बुद्धदेव के दाँत और कपाल धातु की पूजा करने चले गए थे। ह्वेकिंग तो बीमार पड़ गया,

---

* चीनी भाषा के मूल मे "श्वेताम्बर" है। भिक्षु ही रँगे वस्त्र धारण करते हैं इसीलिये यह शब्द गृहस्थों के लिये प्रयुक्त हुआ है।

तावचिंग उसकी सेवा के लिये रह गया। ह्वेता: अकेला पुरुषपुर गया और उसने सब को देखा। फिर ह्वेता: पावयुन और सांग-किंग चीन देश को लौट गए। भिक्षापात्र के विहार मे ह्वेकिंग की दशा बिगड़ती गई।* इस पर फाहियान ने बुद्धदेव के कपालधातु की ओर का मार्ग लिया।

---

* चीनी भाषा के मूल में जो चिह्न है उसका अभिप्राय हैं 'अवस्था का बिगड़ते जाना' पर उसे न समझ कर लेगी आदि ने came to his end और श्रीयोगीन्द्रनाथ समाद्दार ने 'तथाय देहावसान करिलेन' उसी के आधार पर अनुवाद किया है। लेगी साहेब १३ पर्व में ह्वेकिंग की मृत्यु का वर्णन देख चकरा गए है। वे इस पर्व के नोट मे लिखते है This should be Hwuy-ying King was at this time ill in Nagâra and indeed afterwards he dies in crossing the little snowy mountains, but all the texts make him die twice The confounding of the two names has been pointed out by Chinese critics अर्थात् यह ह्वेयिंग होना चाहिए। किंग उस समय नगार मे बीमार पडा था और वह पीछे छोटा हिमालय पार करते मरा, पर सब मूल ग्रंथो मे इसका दो बार मरना लिखा है। चीनी आलोचकों ने भी इन दोनो नामो की गडबडी स्वीकार की है। वे १४ पर्व के नोट १ मे घबरा कर लिखते है कि all the texts have Hwuyking, अर्थात् सब मूल ग्रथो मे ह्वेकिंग है। पर लेगी साहव को यह न सूझी कि कपालधातु नगार ही मे था। मालूम होता है कि कपालधातु संघाराम को उन्होने भ्रमवश नगार से पृथक समझा।

तेरहवाँ पर्व

नगार व नगरहार

दक्षिण दिशा मे १६ योजन चलकर नगार जनपद की सीमा पर हेलो-* नगर मे पहुँचे। इस नगर मे बुद्धदेव का कपाल-धातु एक विहार मे है। विहार पर सोने के पत्र चढे हैं और सप्तरत्न जड़े हैं। जनपद का राजा कपालधातु का बड़ा मान करता है और उसे चिंता रहती है कि चोर न ले जायँ। जनपद के अच्छे कुलों के आठ मनुष्यो को नियत किया है। प्रत्येक को एक एक चाबी दे दी है। चाबी से बंद करते और रक्षा करते हैं। केवाड़ खोल कर सुगंधित जल से हाथ धोते हैं, फिर बुद्धदेव के कपालधातु को निकाल कर विहार के बाहर ऊँचे सिहासन पर रखते हैं। यह सप्तरत्न के संपुट मे रहता है जिस पर स्फटिक का ढक्कन होता है और मोतियों की झालर लगी रहती है। धातु पीताभ श्वेत वर्ण है, चार इंच† भर गोलाई मे है और बीच मे उभरा हुआ है। विहार से बाहर निकालनेवाले ऊंचे मचान पर चढ़ कर बड़ा डंका बजाते हैं, शंखध्वनि करते और ताँबे की झांझ ठोकते हैं। राजा शब्द सुनकर विहार मे

---

* इसे अब हिड्डा कहते है। यह पेशावर के पश्चिम जलालाबाद से पाच मील दक्षिण है। इस जनपद को नगरहार भी कहते थे।

† सुयेनच्वाग ने १२ इंच लिखा है।

जाता है, पुष्प और धूप से पूजा करता और विनती करके चला जाता है *। पश्चिम के द्वार से जाता और पूर्व के द्वार से आता है। नित्य प्रातःकाल के समय राजा पूजा करता है। पूजा कर के फिर राज्य का काम करता है। यहां के सेठ लोग भी पहले यहां पूजा कर के तब फिर अपने घर का काम काज करते हैं। नित्य प्रति ऐसा ही होता है। क्रिया मे तनिक भी व्यतिक्रम नही होने पाता। पूजा हो जाती है तो धातु विहार मे रख देते हैं। यह सप्त-धातु-निर्मित 'विमोचस्तूप' † निकालने और रखने के समय खुलता और बंद होता है। यह पाँच हाथ ऊँचा है। विहार के द्वार पर प्रातःकाल के समय फूल और धूप बेचनेवालों की भीड़ लगी रहती है। पूजा करनेवाले उनसे मोल लेकर चढ़ाते हैं। अनेक देश के राजा सदा अपनी ओर से यहा पूजा करने के लिये दूत भेजते रहते हैं। विहार तीस पग घेरे मे है। आकाश हिले, पृथिवी धँसे, पर यह स्थान नहीं हिल सकता।

यहां से उत्तर एक योजन चलकर नगार जनपद की राजधानी मे पहुँचे। यहां बुद्धदेव ने जब वे बोधिसत्व थे फूलों की पाँच डलियां मोल लेकर दीपंकर बुद्ध को अर्पण की थीं। नगर के मध्य मे बुद्धदेव का दतस्तूप है। वहा भी कपालधातु की भांति पूजा होती है।

* लेगी ने लिखा है कि सब यथाक्रम हो जाने पर सिर पर रखता है।

† वह स्तूप जिसके भीतर धातु के रखने और निकालने का मार्ग ना हो।

नगर के पूर्व एक योजन चलकर एक दून के मुहाने (नाके) पर पहुँचे। यहां बुद्धदेव का दंड* है। यहा पर भी विहार बना है और पूजा होती है। दंड गोशीर्ष चदन का बना हुआ सत्रह अठारह हाथ लंबा है और लकड़ी की चोंगी मे रखा है। सैकड़ों हजारों मनुष्यों से भी नहीं उठ सकता।

दून के मुहाने से होकर पश्चिम ओर चलने पर बुद्धदेव की संघाली† मिलती है। यहां पर भी एक विहार है और पूजा होती है। इस देश के लोगों मे यह चाल है कि जब अवर्षण पडता है तो देश के लोग झुंड के झुंड इकट्ठे होकर उस वस्त्र को निकालते हैं और पूजा अर्चा करते हैं, तब दैव बरसता है।

नगर के दक्षिण आध योजन पर पर्वत मे एक पहाड़ी गुफा है जिसका द्वार दक्षिण-पश्चिमाभिमुख है। इसमे बुद्धदेव की छाया है। दस पग से अधिक दूर जाकर देखने से साक्षात् दर्शन होता है। उनके स्वर्णाभ वर्ण और लक्षण‡ स्पष्ट और स्वच्छ देखाई पड़ते हैं, पर ज्यों ज्यों पास जाओ स्वप्नवत् विलीन होते जाते हैं। सब देशों के राजा बड़े बड़े चतुर चितेरे प्रति-

---

* आईसिंग ने लिखा है कि मैंने अपनी आंखों देखा है कि भारतवर्ष में दंड के ऊपर लोहे की कुत्ती होती है जिसका व्यास दो वा तीन इंच और मध्य से चार पांच अंगुल धातु की छड़ की भांति मोटा होता है। यह दंड दृढ और कड़ी लकड़ी का होता है और पैर से भौं तक ऊँचा होता है, नीचे लोहे की सामी होती है।

† इसे संघाती भी कहते हैं।

‡ महापुरुषों के बत्तीस लक्षण। दे० 'बुद्धदेव'।

फाहियान से बोला कि मैं तो जीने का नहीं, तुम शीघ्र यहां से भागो, ऐसा न हो कि सब के सब यहीं मर जायँ। इतना कह कर वह तो मर गया। फाहियान उसके शव को पीट पीट यह कहकर चिल्लाकर रोने लगा कि मुख्य उद्देश पर पानी फिर गया*—भाग्य, हम क्या करें? निदान उठे और दक्षिण पर्वत-माला को ज्यों त्यों पार कर लोई† जनपद मे पहुँचे। यहां लगभग तीन सहस्र महायान और हीनयानानुयायी श्रमण रहते हैं। वहां वर्षावास के लिये ठहरे। उसे बिता कर दक्षिण ओर दस दिन चल कर पोना‡ जनपद मे पहुँचे। वहां तीन सहस्र के लगभग हीनयानानुयायी श्रमण रहते हैं। यहां से पूर्व दिशा मे तीन दिन चले फिर 'हिंतू'§ पार किया। इस पार की भूमि समथर और नीची थी।

पंद्रहवाँ पर्व

—:०:—

पीतू वा पजाब

नदी पार करते ही पीतू‡‡ नामक जनपद पड़ा जहां बौद्ध

---

* बील ने इसका अनुवाद 'Our purpose was not to produce fortune' और लेगी ने "Our original plan has failed" किया है।

† लोइ वा रोही - काबुल के एक भाग का नाम जो सफेद कोह के दक्षिण और कुर्रम नदी के आसपास है।

‡ 'बन्नू' यह पंजाब मे है।

§ यहा भी हियंतु शब्द है जिसे सिंधु लिखा है।

‡‡ सिंधुनद के बाएँ किनारे का देश। इसमे सारा पंजाब सम्मिलित था।

धर्म का बडा प्रचार था। सब महायान और हीनयान के अनु- यायी थे। चीन देश से अपने सहधर्मी को आया देख उन्होंने बड़ो करुणा और सहानुभूति प्रगट की। कहने लगे कि प्रांत में रह कर ये लोग प्रव्रज्या लेकर धर्म की खोज मे आए। उनकी इच्छा पूर्ण की और धर्मानुसार उनसे व्यवहार किया।

सोलहवाँ पर्व

—:o:—

मथुरा

यहा से दक्षिण-पूर्व दिशा मे अस्सी योजन चले। मार्ग मे लगातार बहुत से विहार मिले जिनमे लाखों श्रमण मिले। सब स्थानों मे होते हुए एक जनपद मे पहुँचे। जनपद का नाम मताऊला (मथुरा) था। पूना नदी के किनारे किनारे चले। नदी के दहिने बाएँ बीस विहार थे जिनमे तीन सहस्र से अधिक भिक्षु थे। बौद्ध धर्म का अच्छा प्रचार अब तक है। मरुभूमि से पश्चिम हिंदुस्तान के सभी जनपदो में जनपदों के अधिपति बौद्ध धर्मानुयायी मिले। भिक्षुसंघ को भिक्षा कराते समय वे अपने मुकुट उतार डालते हैं। अपने बंधुओ और अमात्यो सहित अपने हाथो से भोजन परसते हैं। परस कर प्रधान* के

---

* संघ का नायक। यह कोई 'महास्थविर" होता था जो संघ में विद्या-वयो वृद्ध होता था।

आगे आसन बिछवा कर बैठ जाते हैं। संघ के सामने खाट पर बैठने का साहस नहीं करते। तथागत के समय जो प्रथा राजाओं में भिक्षा कराने की थी वही अब तक चली आती है।

यहां से दक्षिण मध्य देश कहलाता है। यहां शीत और उष्ण सम है। प्रजा प्रभूत और सुखी है। व्यवहार की लिखा-पढ़ी और पंचायत कुछ नहीं है। लोग राजा की भूमि जोतते हैं और उपज का अंश देते हैं। जहां चाहे जायँ, जहां चाहें रहे। राजा न प्राणदंड देता है और न शारीरिक दंड देता है। अपराधी को अवस्थानुसार उत्तम साहस वा मध्यम साहस का अर्थदंड दिया जाता है। बार बार दस्युकर्म करने पर दक्षिण करच्छेद किया जाता है। राजा के प्रतिहार और सहचर वेतन-भोगी हैं। सारे देश में कोई अधिवासी न जीवहिंसा करता है, न मद्य पीता है और न लहसुन प्याज खाता है; सिवाय चांडाल के। दस्यु को चांडाल कहते हैं। वे नगर के बाहर रहते हैं और नगर में जब पैठते हैं तो सूचना के लिये लकड़ी बजाते चलते हैं, कि लोग जान जायँ और बचा कर चलें, कहीं उनसे छू न जायँ। जनपद में सूअर और मुर्गी नहीं पालते, न जीवित पशु बेचते हैं, न कहीं सूनागार और मद्य की दूकानें हैं। क्रय विक्रय में कौड़ियों का व्यवहार है। केवल चांडाल मछली मारते, मृगया करते और मांस बेचते हैं।

बुद्धदेव के बोधि लाभ करने पर सब जनपदों के राजा और सेठों ने भिक्षुओं के लिये विहार बनवाए। खेत, घर, वन, आराम

वहां की प्रजा और पशु को दान कर दिए। दानपत्र ताम्रपत्र पर खुदे हैं। प्राचीन राजाओं के समय से चले आते हैं, किसी ने आज तक विफल नहीं किया, अब तक वैसे ही हैं। विहार में संघ को खान पान मिलता है, वस्त्र मिलता है, आए गए को वर्षा मे आवास मिलता है।*

श्रमणों का कृत्य शुभ कर्मों से धर्मोपार्जन करना, सूत्र का पाठ करना और ध्यान लगाना है। आगंतुक (अतिथि) भिक्षु आते हैं तो रहनेवाले (स्थायी) भिक्षु उन्हे आगे बढ़ कर लेते हैं। उनके वस्त्र और भिक्षापात्र स्वय ले आते हैं। उन्हे पैर धोने को जल और सिर मे लगाने को तेल देते हैं। विश्राम ले लेने पर उनसे पूछते हैं कि कितने दिनों से प्रव्रज्या ग्रहण की है, फिर उन्हे उनकी योग्यता के अनुसार आवास देते हैं और यथानियम उनसे व्यवहार करते हैं।

भिक्षु-संघ के स्थान पर सारिपुत्र, महामौद्गलायन और महाकश्यप के स्तूप बने रहते हैं और वहीं अभिधर्म, विनय और सूत्र के स्तूप भी होते हैं। वर्षा से एक मास पीछे उपासक लोग भिक्षुओं को दान देने के लिये परस्पर स्पर्द्धा करते हैं। सब ओर से लोग साधुओ को विकाल के लिये 'पेय' भेजते हैं। भिक्षु संघ के संघ आते हैं, धर्मोपदेश करते हैं, फिर

---

*अंग्रेजी अनुवादको ने इस वाक्य का अनुवाद न जाने क्यो छोड़ दिया है।

सारिपुत्र के स्तूप की पूजा माला और गध से करते हैं। रात भर दीपमालिका होती है और गीत वाद्य कराया जाता है।

सारिपुत्र कुलीन ब्राह्मण थे। तथागत से प्रव्रज्या के लिये प्रार्थना की। महामौद्गलायन और महाकश्यप ने भी यही किया था। भिक्षुनी प्रायः आनंद के स्तूप की पूजा करती हैं। उन्होंने ही तथागत से स्त्रियों को प्रव्रज्या देने की प्रार्थना की थी। श्रामणेर राहुल की पूजा करते हैं। अभिधर्म के अभ्यासी अभिधर्म की, विनय के अनुयायी विनय की पूजा करते हैं। प्रति वर्ष पूजा एक वार होती है। हर एक के लिये दिन नियत है। महायान के अनुयायी प्रज्ञापारमिता, मंजुश्री* और अवलोकितेश्वर † की पूजा करते हैं।

जब भिक्षु वार्षिकी अग्रहार पा जाते हैं तब सेठ और ब्राह्मण लोग वस्त्र और अन्य उपस्कार बॉटते हैं। भिक्षु उन्हे लेकर यथाभाग विभक्त करते हैं। बुद्धदेव के बोधि प्राप्ति काल से ही यह रीति, आचार व्यवहार और नियम अविच्छिन्न लगातार चले आते हैं। हियंतु उतरने के स्थान से दक्षिण हिंदुस्तान तक और दक्षिण समुद्र तक चालीस पचास हजार ली तक चौरस (भूमि) है, इसमें कहीं पर्वत झरने नहीं हैं, नदी का ही जल है।

---

* इन्हें महामति कुमार भी कहते है। यह एक बोधिसत्व है।

† चीनी में इसे क्वानय्येन कहते है। तिब्बत मे यह महापुरुष है पर जापान के लोग इसे देवी मानते है।

सत्रहवाँ पर्व

—:०:—

सकांश्य

यहां से दक्षिण-पूर्व अठारह योजन चले, सकाश्य* नामक जनपद मिला। जब बुद्धदेव त्रयस्त्रिंश स्वर्ग गए थे, तो तीन मास अपनी माता को अभिधर्म का उपदेश देकर उसी जगह उतरे थे। बुद्धदेव त्रयस्त्रिंश स्वर्ग अपनी दिव्य शक्ति† से गए थे, अपने शिष्यों को भी न बतलाया था। वर्षा बीतने में जब सात दिन रह गए तब दृष्टि-अवरोध दूर हुआ। अनिरुद्ध ने दिव्य चक्षु से भगवान को देखा और तत्क्षण आयुष्मान मौद्गलायन से कहा कि जाकर भगवान का अभिवादन करो। मौद्गलायन भगवान के पास गया और अभिवादन करके उसने उनसे संभाषण किया। बुद्धदेव ने कहा कि सात दिन पीछे जंबूद्वीप में उतरूंगा। मौद्गलायन लौट आया। फिर आठो जनपद के अधिपति अमात्य और प्रजावर्ग जो बुद्धदेव के दर्शन के प्यासे थे इस जनपद में भगवान के दर्शन के लिये एकत्र होने लगे। भिक्षुनी उत्पला ने अपने मन में कहा कि आज देश देश के राजा अमात्य और प्रजावर्ग भगवान को मिलने आए हैं, मैं साधारण स्त्री हूं कैसे

---

* कन्नौज के पश्चिम फरुर्खाबाद जिले में सकिसिया के पास इसके खँडहर है।

† कोई कोई इसे 'ऋद्धि' भी कहते है।

भगवान का पहले अभिवादन कर सकूंगी। बुद्धदेव ने अपनी दिव्य शक्ति से उसे चक्रवर्त्ती राजा बना दिया। उसने बुद्धदेव का पहले अभिवादन किया।

बुद्धदेव जब त्रयस्त्रिंश धाम से आए थे तो उतरते समय तीन नि:श्रेणियां प्रगट हुई थीं। बुद्धदेव मध्य की नि:श्रेणी पर थे। वह सप्त-रत्नमयी थी। ब्रह्मलोक के महाराज ने दहिनी ओर चांदी की नि:श्रेणी प्रगट की थी और वे सफेद चामर लेकर खड़े थे। देवराज शक्र ने वाईं ओर तप्त काचन की नि:श्रेणी प्रगट की थी और वे सप्तरत्नमय छत्र लेकर खड़े थे। अनगिनत देवगण बुद्धदेव के साथ उतरे थे। तीनो नि:श्रेणियां भूमि मे धँस गई केवल सात आरोह देखने को बच गए थे। पीछे राजा अशोक ने यह जानने के लिये कि नींव कहां हैं, खोदने के लिये आदमी भेजे, पीले पानी तक खोदी गई, पर अंत न मिला। राजा की श्रद्धा-भक्ति बढ़ गई, उसने आरोह पर विहार बनवाया और मध्य के आरोह पर १६ हाथ की मूर्ति स्थापित की, विहार के पीछे तीस हाथ* ऊँचा स्तंभ बनवाया, जिसके ऊपर सिंह बना है। स्तूप के चारो ओर बुद्धदेव की मूर्ति बनवाई। भीतर बाहर स्वच्छ स्फटिक ऐसा चमकीला है। यहां जैनियो† के आचार्य्यों ने भिक्षुओ से इस स्थान के अधिकार पर विवाद किया। भिक्षु निग्रह-स्थान मे आ

---

*चीनी भाषा में चाउ है। वह लगभग हाथ भर का होता है। अंग्रेजी अनुवादकों ने ५० हाथ लिखा है।

† अन्य तीर्थंकर वा अन्य तीर्थी से अभिप्राय जैनाचार्य्यों से है।

रहे थे। विपक्षियों ने शपथ किया और कहा कि भिक्षुओं के पक्ष का अधिकार हो तो कुछ दैवी साक्षी मिले। विपक्षियों का यह कहना था कि स्तूप पर का सिंह बड़े जोर से तड़पा। साक्षी देख विपक्षी डर गए और पराजित होकर वहां से भाग गए।

बुद्धदेव तीन मास तक स्वर्ग का अन्न खाते रहे थे, उनकी देह से देवताओं की बास आती थी। वह सामान्य मनुष्यों में नहीं होती। उन्होंने तत्क्षण स्नान किया था। पीछे लोगों ने उस जगह को तीर्थ-स्थान बनाया। वह तीर्थ-स्थान अब तक है।

जिस स्थान पर उत्पला ने बुद्धदेव का अभिवादन किया था वहां स्तूप बना है। जहां बुद्धदेव आकर बैठे, जहां केश नखछेदन किया, वहां स्तूप बने हैं। जहां पूर्व के तीन बुद्ध और शाक्यमुनि बुद्ध बैठे, जिस स्थान पर चक्रमण किया, जिस स्थान पर सब बुद्धों की छाया है, सर्वत्र स्तूप बने हैं। इस स्थान पर लगभग चार हजार श्रमण होंगे। सब संघ के भांडार में भोजन पाते हैं और हीनयान तथा महायान के अनुयायी हैं।

इस स्थान के पास एक श्वेतकर्ण नाग है। वही भिक्षुसंघ का दानपति है। जनपद में उसीसे पुष्कल अन्न होता है, यथा-समय वृष्टि होती है और ईतियां नहीं पड़ती। इसके प्रत्युपकार में भिक्षुसंघ ने नाग के लिये विहार बना दिया है, उसके बैठने के लिये आसन कल्पित है, उसका भोग लगता है और पूजा होती है। भिक्षुसंघ से नित्य तीन जन नागविहार में जाते हैं और भोजन करते हैं। वर्षा बीतने पर नागराज कलेवर बदलता है। एक छोटा

सा सँपोला बन जाता है जिसके कानो के पास सफेद बुंदकियां होती हैं। भिक्षुसंघ उसे पहिचानते हैं, ताँबे के कलस मे दूध भरते हैं और नाग को उसमे डाल सब ऊँच नीच के पास ले जाते हैं। यह कृत्य अकथनीय होता है। ऐसी यात्रा वर्ष मे एक बार होती है। जनपद बहुत उपजाऊ है, प्रजा प्रभूत और सुखी है। यहां और देश के लोग आते हैं तो उन्हे कष्ट नहीं होने पाता, उन्हे जिस वस्तु की आवश्यकता होती है देते हैं।

यहां से पश्चिमोत्तर पचास योजन पर एक विहार है जिसे आडवक कहते हैं। आडवक नाम का एक दुष्ट यक्ष था*। बुद्धदेव ने उसे धर्मोपदेश दिया था। पीछे लोगो ने उस स्थान पर विहार बनाया। जब एक अर्हत को उसका दान देने के लिये उसके हाथ पर जल छोड़ने लगे तो जल की कुछ बूँदे पृथ्वी पर गिरी थीं वे उस जगह अब तक पड़ी हैं कितना ही पोंछो मिटती नहीं।

यहां बुद्धदेव का एक स्तूप है। एक धर्मिष्ट यक्ष वहां झाड़ू बहारू करता और पानी छिड़कता है, किसी मनुष्य की आवश्यकता नहीं पड़ती।

अंध्र † देश के राजा ने उससे कहा कि जो तू सब कर सकता है, तो अच्छा मैं बहुतेरे दल संग लेकर आता हूं, मल बढकर

---

* अग्रेजी में यक्ष के नाम का अनुवाद 'The Great Heap' किया गया है। देखो पंद्रहवां चातुर्मास्य—'बुद्धदेव'।

† लेगी ने 'a king of the corrupt views' अनुवाद किया है अर्थात् "दुष्टविचार का राजा"।

ढेर लगेगा, साफ़ करना ? इस पर यक्ष ने बड़ी आँधी चलाई, उसे बहा कर सब साफ कर दिया।

यहां छोटे छोटे सैकड़ो स्तूप हैं। मनुष्य दिन भर गिना करे तो भी पार नहीं पा सकता। यह कोई चाहे कि जानेंगे ही और एक एक स्तूप पर एक एक मनुष्य खड़ा कर दे और फिर एक एक करके गिने तो भी न्यूनाधिक (संख्या) न जान पावेगा।

एक संघाराम है। उसमे लगभग छ सात सौ भिक्षु होंगे। उसमे प्रत्येक बुद्ध के भोजन करने का स्थान है, निर्वाण स्थान पहिये के बराबर है। उस स्थान पर घास नहीं जमती। जहां वस्त्र सुखलाया था वहां अब तक चिह्न है*।

अठारहवाँ पर्व

कान्यकुब्ज

फाहियान ने नागविहार मे वर्षा बिताई। वर्षा बिता कर दक्षिण-पूर्व दिशा मे सात योजन चल कर कान्यकुब्ज† नगर मे पहुँचा। नगर गंगा के किनारे है। दो संघाराम हैं, सब हीनयानानुयायियों के हैं। नगर से पश्चिम सात ली पर गंगा के

---

* यह बात फाहियान ने सुनी सुनाई लिखी है। देखी नहीं थी। संकाश्य नगर मे किसी भिक्षु से ये बातें उसने सुनी होगीं।

† वर्तमान कन्नौज।

किनारे बुद्धदेव ने अपने शिष्यों को उपदेश किया था। कहते हैं उपदेश था दुःख सुख की क्षणिकता और जीव के पानी के बबूले वा फेन के सदृश होने पर। इस स्थान पर स्तूप बना है और अब तक है।

गंगा के पार तीन योजन दक्षिण चल कर आले* नामक एक गाॅव मे पहुँचे। इस स्थान पर बुद्धदेव ने अपने शिष्यो को धर्मोपदेश किया था, चंक्रमण किया था और बैठे थे। यहां स्तूप बने थे।

उन्नीसवाँ पर्व

शाखे वा शांचे

यहां से दक्षिण-पश्चिम दिशा मे दस† योजन चलकर शांचे‡ नामक महा जनपद मे पहुँचे। शांचे नगर के दक्षिण

---

* आरण्य। यह स्थान पूर्व मे जंगल था। फाहियान के समय वहां छोटी बस्ती थी।

† लेगी आदि ने तीन योजन लिखा है पर मूल मे दस योजन है।

‡ यह साकेत है। अयोध्या का नाम साकेत है। अधिक संभव है कि शांचे नगर साकेत नगर ही हो। यह भी संदेह होता है कि कही यह वही जनपद न हो जिसे सुयेन-च्वांग ने विशाखा लिखा है। उस स्थान के संबध में उसने लिखा है कि 'इस स्थान पर ७० फुट ऊँचा एक वृक्ष है। यहां पूर्व काल में बुद्धदेव ने दंतधावन किया था। दंतधावन का काष्ठ पृथिवी पर फेंक दिया था। काष्ठ ने जड पकड ली और बढ़ कर यह वृक्ष हो गया। विधर्मियो ने बारबार काटा पर वह फिर हरा हो गया। उसकी पत्तियां और डालियां सब हरी रहती है।'

द्वार के पूर्व ओर के मार्ग पर बुद्धदेव ने दंतधावन करके काष्ठ* को भूमि पर फेंक दिया था, वह न बढ़ता था न घटता था।

जैनियों और ब्राह्मणों ने ईर्षा की और उसे काट कूट कर दूर फेंक दिया, पर वह फिर वहीं पूर्ववत् लग गया। यहां चारों बुद्धों के चंक्रमण और बैठने के स्थान पर स्तूप अब तक बने हैं।

बीसवाँ पर्व

—:o:—

श्रावस्ती

दक्षिण दिशा में चले, आठ योजन चलकर कोशल जनपद के नगर श्रावस्ती † में पहुँचे। नगर में बहुत कम अधिवासी हैं और जो हैं तितर बितर हैं, सब मिला कर दो सौ से कुछ ही अधिक घर होंगे। यह नगर प्रसेनजित ‡ राजा की राजधानी था। महाप्रजापति के प्राचीन विहार की जगह, सेठ सुदत्त की भीत और कुँओं पर, अंगुलिमाल के अर्हत होने और निर्वाणा-नंतर उसके चैत्य के स्थान पर पीछे लोगों ने स्तूप बनाए, वे

---

* संभव है कि यह अयोध्या का वही स्थान हो जिसे 'दतुहन कुंड' कहते हैं। उसके विषय में ऐसी ही दंतकथा है कि भगवान रामचंद्रजी ने वहां दंतधावन करके काष्ठ फेंक दिया था और वह लग गया।

† यह स्थान अवध के बहराइच जिले में बलरामपुर के पास है। इसे अब सहेत-महेत कहते हैं। यह अब उजाड़ पड़ा है। यहां बौद्ध और जैनी यात्री बहुत जाते हैं। जैनी भी इसे अपना पवित्र स्थान मानते हैं।

‡ यह राजा गौतमबुद्ध का समकालीन था।

अब तक नगर मे हैं। ब्राह्मणों और जैनियों ने मन ही मन द्वेष और डाह किया, उन्हे नष्ट करना चाहा पर आकाश से इतनी झड़ी, वज्राघात और अशनिपात हुए कि वे अंत को कृतकार्य न हो सके।

नगर के बाहर दक्षिण द्वार से १२०० पग पर पश्चिम के मार्ग पर सेठ सुदत्त ने विहार बनवाया था। विहार के पूर्व ओर के द्वार खुलने पर इधर उधर दो पत्थर के स्तभ पड़ते थे। बाईं ओर के स्तंभ पर चक्र की, और दाहिनी ओर के स्तंभ पर वृष की आकृति बनी थी। विहार के दाये बाये स्वच्छ और निर्मल जलपूर्ण सरोवर थे, सदा-बहार वृक्षो के बन थे जिनमे रंग बिरंग के फूल खिले रहते थे। अपूर्व और मनोहर शोभा जेतवन विहार की थी।

बुद्धदेव जब त्रयस्त्रिंश स्वर्ग को गए और उन्होने ९० दिन तक अपनी माता को अभिधर्म का उपदेश किया तो महाराज प्रसेनजित बुद्धदेव के दर्शन को उत्सुक हुए और उन्होने गोशीर्ष चंदन की एक प्रतिमा बुद्धदेव की बनवा कर जिस स्थान पर वे प्रायः बैठते थे रखवा दी थी। पीछे जब बुद्धदेव विहार मे लौट कर आए तो प्रतिमा बुद्धदेव मे मिलने के लिये उठ कर चली। बुद्धदेव ने कहा कि अपने स्थान पर लौट जा, मेरे निर्वाणानंतर तू चतुर्विध भिक्षुसंघ के लिये आदर्श होगी। मूर्ति अपने स्थान पर लौट गई। यह प्रतिमा बुद्धदेव की पहली प्रतिमा थी। पीछे लोगों ने उसीके आदर्श पर बनवाई हैं। बुद्धदेव तब वहां से

गए। दक्षिण ओर एक छोटे विहार मे जो मूर्ति के रहने के स्थान से अलग २० पग पर था वे चले गए।

जेतवन विहार सात तले का था। सारे जनपद के राजा प्रजा सब परस्पर उस पर चढ़ावा चढ़ाने, रेशम की ध्वजा और चांदनी लटकाने, फूल बिखेरने, धूप जलाने, और दीप प्रज्वलित करने के लिये स्पर्धा करते थे। नित्य प्रति अव्यवच्छिन्न ऐसा ही करते थे। एक चूहा दीप की बत्ती मुँह में दाब कर ले गया और ध्वजा वा चांदनी मे उसने आग लगा दी, विहार मे आग लग गई और सातो तले जल कर भस्म हो गए। जनपद के राजा प्रजा लोग सब दुखी और क्लेशित हुए, उन्होंने यह समझा कि चंदन की मूर्ति भी जल गई। आश्चर्य की बात! चार पॉच दिन पीछे जब पूर्व के एक छोटे विहार का द्वार खुला तो मूर्ति वहां देख पड़ी। सब बड़े प्रसन्न हुए और मिलकर विहार बनवाने लगे। जब छत बन गई तो मूर्ति को फिर अपने स्थान पर ले गए।

फाहियान और ताउचिंग जब जेतवन विहार मे पहुँचे तो उनके मन मे यह विचार कर कि भगवान यहां पचीस वर्ष रहे बड़ी करुणा उत्पन्न हुई। पृथ्वी के प्रांत मे उत्पन्न होकर अपने आंतरिक मित्रो के साथ इतने जनपदो से होकर आए, उनमे से कुछ लौट गए, कुछ ने जीवन की असारता और क्षणिकता प्रमाणित की। आज उस स्थान को जहां बुद्धदेव रहे थे बिना उनके देखा। इस आंतरिक वेदना से बहुत दुःख हुआ। श्रमणों

का झुंड बाहर आया, वे कहने लगे कि किस जनपद से आए हो। उत्तर दिया कि हान के देश से आए हैं। श्रमण लोग दीर्घ निश्वास लेकर कहने लगे आह ! सीमांत के लोग हमारे धर्म की जिज्ञासा में यहां आते हैं—आश्चर्य की बात है। परस्पर कहने लगे कि हम लोग गुरु शिष्य परम्परा से आनेवालों को देखते आए हैं पर हान देश के 'मार्गी'* लोगों को यहां आते नहीं देखा।

विहार से पश्चिमोत्तर में चार ली पर 'चक्षुकरणी' नामक वन है। पहले पाँच सौ अंधे यहां विहार के आश्रित रहते थे। बुद्धदेव के धर्मोपदेश से उनको फिर दृष्टि हो गई। अंधों ने मारे हर्ष के अपने दंडों को भूमि मे गाड़ दिया और साष्टांग प्रणिपात किया। दंडे तत्क्षण लग गए और खड़े हो गए। सामान्य जनों ने बड़ी बड़ाई की और किसीने काटने का साहस नहीं किया और बढ़कर वे वन हो गए। इसी कारण उसे 'चक्षुकरणी' कहने लगे। 'जेतवन' संघाराम के श्रमण भोजनानंतर प्राय: इस वन मे बैठ कर ध्यान लगाया करते हैं।

जेतवन विहार के पूर्वोत्तर छ सात ली पर 'माता विशाखा' ने विहार बनवाया था और उसमे बुद्धदेव और श्रमणों को आमंत्रित किया था, वह अब तक है।

जेतवन विहार महाराम मे दो द्वार हैं, एक पूर्व ओर, दूसरा उत्तर ओर। इस बाग को सेठ सुदत्त ने भूमि पर स्वर्ण-मुद्रा

---

* बौद्ध-मार्गानुयायी।

(मोहर) बिछा कर मोल लिया था। विहार बीचोबीच मे था। बुद्धदेव इस स्थान पर बहुत काल तक रहे और उन्होंने लोगो को धर्मोपदेश किया था। जहां चक्रमण किया, जिस स्थान पर बैठे, सर्वत्र स्तूप बने हैं और उनके अलग अलग नाम हैं। यही सुंदरिक ने मनुष्य-हत्या का दोष बुद्धदेव पर लगाया था। जेतवन विहार के पूर्व द्वार से उत्तर ७० पग चलकर पश्चिम के मार्ग पर ६६ पाखंडों (मिथ्या तीर्थंकरों) से शास्त्रार्थ किया था। जनपद के राजा, महामात्य, सेठ और प्रजावर्ग सब सुनने के लिये झुंड के झुंड एकत्र थे, एक जैनी स्त्री जिसका नाम चिंचमना* था विद्वेषियों की प्रेरणा से अपने ऊपर वस्त्र लपेट गर्भिणी का रूप धर समाज मे आई और उसने बुद्धदेव पर व्यभिचार का दोष लगाया था। इस पर देवराज शक्र † आया, उसने सफेद चूहे उत्पन्न किए जिन्होंने मेखला को दाँत से काट दिया और अतिरिक्त वस्त्र भूमि पर गिर पड़े। भूमि फट गई और वह भूमि के गर्भ मे समा गई। देवदत्त भी जो अपने नखों में विष भर के बुद्धदेव पर आघात करना चाहता था भूमि के गर्भ मे समा गया था। पीछे लोगों ने इन स्थानों पर स्मरणार्थ चिह्न बनाए हैं।

शास्त्रार्थ के स्थान पर ६० हाथ ऊँचा विहार बना था।

---

* बौद्ध ग्रंथों में उस स्त्री का नाम चिंचा लिखा है।

† लेगी ने 'Changed himself and some devas into white mice' अर्थात् आप और अन्य देवता चूहे बन गए लिखा है पर मूल मे कोई ऐसा चिह्न नहीं जिसका यह आशय हो कि 'अन्य देवता।'

विहार में बुद्धदेव की बैठी हुई मूर्ति थी। सड़क के पूर्व एक देवालय था जिसे 'छायागत' कहते थे। वह भी साठ हाथ ही ऊँचा था। उसके 'छायागत' नाम पड़ने का कारण यह है कि जब सूर्य्य पश्चिम दिशा मे रहता था तो भगवान के विहार की छाया जैनियो के देवालय पर पड़ती थी, पर जब सूर्य्य पूर्व दिशा मे रहता था तव देवालय की छाया उत्तर ओर पड़ती थी पर बुद्धदेव के विहार पर नही पड़ती थी। जैनियों के आदमी नियत थे, वे नित्य देवालय मे झाड़ू वहारू करते थे, पानी छिड़कते थे, धूप दीप जलाते और पूजा करते थे। प्रातःकाल के समय दीप वहां से बुद्धदेव के विहार मे उठ कर चला आता था। ब्राह्मण लोग* घवड़ाये और कहने लगे कि देखो श्रमण हमारे दीप उठा ले जाते हैं और बुद्धदेव की पूजा करते हैं। हम (दीप) वंद न करेगे। इस पर ब्राह्मण रात भर जागते रहे तो देखा कि पूज्य देवगणों ने दीप लेकर बुद्धदेव के विहार की तीन वार परिक्रमा की और बुद्धदेव की पूजा की। पूजा करके वे अंतर्धान हो गए। इससे ब्राह्मणों को बुद्धदेव का आध्यात्मिक महत्त्व विदित हो गया और उन्होने गृह त्याग प्रव्रज्या ग्रहण की। कहते हैं कि जब की यह बात है तब जेतवन विहार के पास ६८ संघाराम थे। सब में श्रमण रहते थे †, एक स्थान भी रीता न था।

---

* सभवतः 'पुजारी'।

† लेगी ने 'Excepting only in one place which was vacant' लिखा है अर्थात् सिवाय एक स्थान के जो सूना था। पर मूल में ऐसा नहीं है।

मध्यदेश मे ९६ पाखंडों का प्रचार है, सब लोक परलोक को मानते हैं, उनके साधु संघ है, वे भिक्षा करते हैं, केवल भिक्षा-पात्र नहीं रखते। सब नाना रूप से धर्मानुष्ठान करते हैं, मार्गों पर धर्मशालाएँ स्थापित की हैं, वहां आए गए को आवास, खाट, बिस्तर, खाना पीना मिलता है। यती भी वहां आते जाते और वास करते हैं। सुनते हैं कि केवल* काल मे कुछ अंतर है।

देवदत्त के अनुयायियों के भी संघ हैं। वे पूर्व के तीनों† बुद्धो की पूजा करते हैं, केवल शाक्यमुनि बुद्ध की पूजा नहीं करते।

श्रावस्ती नगर के दक्षिण-पूर्व दिशा मे चार ली पर विरूढक राजा को ‡ शाक्य जनपद पर आक्रमण करने के लिये जाते हुए बुद्धदेव मार्ग मे बैठे मिले थे। बैठने के स्थान पर स्तूप बना है।

इक्कीसवाँ पर्व

—.०:—

कश्यप, ककुच्छंद और कनकमुनि के जन्मस्थान

नगर के पश्चिम ५० ली पर 'टूवीइ'§ नामक एक गॉव

---

* यहां काल से अभिप्राय भिक्षा करने के काल से जान पड़ता है। बौद्धभिक्षु मध्याह्नानंतर भोजन नहीं करते अन्य सम्प्रदायों के भिक्षु अपराह्न मे भिक्षा करते थे।

† देखो २१ वा पर्व।

‡ मूल मे 'शोय-ए' है। देखो परिशिष्ट 'विरूढक'।

§ श्रावस्ती से ६ मील पर 'टंडवा' नामक गाँव।

पड़ता है। यह कश्यप बुद्ध का जन्मस्थान है। पितापुत्र के दर्शन के स्थान पर और परिनिर्वाण स्थान पर स्तूप बने हैं। कश्यप तथागत के शरीरगत समस्त धातु पर एक बृहत् स्तूप बना है।

श्रावस्ती नगर के दक्षिण-पश्चिम दिशा मे १२ योजन पर 'नपीइ किया'* नामक गॉव पडा। यहा ककुच्छद बुद्ध के जन्म-स्थान, पिता पुत्र के दर्शन के स्थान और परिनिर्वाण स्थान पर स्तूप बने हैं।

यहां से उत्तर दिशा मे एक योजन से कम पर† एक और गॉव पड़ा। यह कनकमुनि का जन्मस्थान है। पिता पुत्र के दर्शन के स्थान पर और परिनिर्वाण स्थान पर स्तूप बने हैं।

---

* इसे नाभिका कहते थे। इस का खडहर नेपाल राज्य मे बाण गगा की बाईं ओर 'लोरी की कुदान' और 'गोटिहवा' गांवो के मध्य में है। बुद्ध-वंश में इसे खेमावती लिखा है।

† यह स्थान नाभिका से उत्तर पूर्व ६॥ मील पर उजाड पड़ा है। तिलौरा और गोबरी के पास खंडहर हैं। इस पर का अशोकस्तम्भ अब तिलौरा के उत्तर ११ मील पर निगलिहवा में टूटा पडा है, उस पर लिखा है 'देवानंपियेन पियदसिन लाजिन चोदस वसा (भिसि) तेन बुधस कोनाकमनस थुवे दुतियं वढिते (बीसतिव) साभिसितेन च अतन आगाच महीपित्ते (सिलाथुवे च उस) पापिते।'

बाईसवाँ पर्व

—.०'—

कपिलवस्तु

यहां से एक योजन से कम चलकर कपिलवस्तु - नगर मे पहुँचे। नगर मे न राजा है न प्रजा। केवल खंडहर और उजाड़। कुछ श्रमण रहते हैं और दस घर अधिवासी हैं। शुद्धोदन के महल मे अब कुमार और माता की मूर्ति बनी है। जहां कुमार श्वेत हस्ती पर आरूढ माता के गर्भ मे प्रविष्ट हुआ था औ जहा कुमार ने नगर के पूर्व द्वार से रोगी को देख रथ लौटाया था वहां स्तूप बने हैं।

जहा 'अए' (असित) ने कुमार के चिह्नों (लक्षणो) को देखा था, जहां कुमार ने नंद आदि के साथ मृत हस्ती को खींच कर अलग फेंका था, जहां पूर्व-दक्षिण दिशा मे तीर चलाया और वह ३० ली पर भूमि मे गड़ा और सोता फूट निकला (जिसे) पीछे लोगो ने कुआं बनाया (जिसका) आगंतुक पानी पीते हैं, (जहां) बुद्धदेव ने मार्ग प्राप्त कर पिता राजा का दर्शन किया, जहां ५०० शाक्यो ने गृह त्याग कर उपाली को प्रणिपात किया, जहां पृथिवी ६ वार विचलित हुई, जहां बुद्धदेव ने देवताओं को धर्मोपदेश किया, जहां चातुर्महाराज आदि द्वाररक्षक थे कि पिता-राजा

कोशल और रामराज्य के बीच का देश जो अचिरावती वा रापती और वाण गगा के बीच में था।

(शुद्धोदन) न आवें, जहां बुद्धदेव न्यग्रोध वृक्ष के नीचे जो अभी है पूर्वाभिमुख बैठे और जहां प्रजापती ने संघाली प्रदान की और जहा विरूढक ने* शाक्यो को निर्बीज किया और शाक्य श्रोतापन्न हुए—सब जगह स्तूप बने हैं। अंत का अब तक है।

नगर के पूर्वोत्तर कई ली पर राजा का† खेत है जहां कुमार ने वृक्ष के नीचे बैठ कर हलवाहों को देखा था।

नगर के पूर्व ५० ली पर राजा का बाग है। बाग का नाम लुंबिनी ‡ है। महारानी ने एक कुंड मे प्रवेश कर स्नान किया था। वह कुंड के उत्तर किनारे से निकली, २० पग चली,

---

* चीन के ग्रथो में '१००० शाक्यों को' पाठ है। किसी किसी के मत से "५०० शाक्य राजकन्याओं को, जिन्हें विरूढक अपने अत.पुर मे ले जाना चाहता था और जब उन्होंने इनकार किया तो उसने उन्हें प्राण से मार डाला" पाठ है।

† प्राचीन काल में राजा लोग हल जोतते और खेती करते थे। इसी लिये कुरु राजा के कृषि का स्थान कुरुक्षेत्र कहलाता है। जनक को खेत जोतते जानकी जी मिली थीं।

‡ यह स्थान नेपाल की तराई मे भगवानपुर के उत्तर उजाड है। बुद्ध का जन्म यहीं हुआ था। बौद्ध ग्रंथो में इसे 'लुबिनीवन' वा 'लुंबिनी-कानन' लिखा है। अशोक का यहा एक टूटा स्तभ खडा है—उस पर लिखा है। "देवानं पियेन पियदसिन लाजिन वीसतिवसाभिसितेन, अत्तन अगच महीयिते हिद बुधे जाते साक्यमुनीति सिला चिगडभी चा कालापित सिलाथवे च उसवापिते हिद भगव जाते ति लुंमिनी गमें उबलिके कटे अठभागिये च।"

उसने अपना हाथ उठाकर एक वृक्ष की शाखा पूर्वाभिमुख हो कर पकडी और कुमार को जना। कुमार पृथिवी पर गिर कर ७ पग चले, दो नागराजो ने कुमार को नहलाया। स्नान के स्थान पर कुआँ (कुंड) बना है। इससे और स्नान के कुंड से अब तक श्रमण पानी भरते और पीते हैं।

सब बुद्धो के चार समान घटनाओ के स्थान * होते हैं—१ मार्ग-प्राप्ति-स्थान, २ धर्म-चक्र-प्रवर्तन का स्थान, ३ धर्मोपदेश, सत्य-निर्णय और पाखड-खडन का स्थान और ४ त्रयस्त्रिंश स्वर्ग से माता को अभिधर्म का उपदेश कर के उतरने का स्थान। अन्यान्य प्रसिद्धि समय विशेष से होती है।

कपिलवस्तु जनपद महाजन-शून्य है। अधिवासी बहुत कम हैं। मार्ग मे श्वेत हस्ती और सिंह से बचने की आवश्यकता है, बिना सावधानी के जाने योग्य नही है।

---

* आइसिंग मे अष्टचैत्य का उल्लेख है। (१)जन्म-स्थान, (२) बोधि-प्राप्ति स्थान, (३) धर्म-चक्रप्रवर्तन स्थान, (४) विभूति-दर्शन वा पाखंड-खंडन स्थान, (५) त्रयस्त्रिंश स्वर्ग से अवतरण स्थान, (६) विवाद-मीमासा स्थान, (७) परमायु-उल्लेख स्थान और (८) परि-निर्वाण स्थान। ये आठों क्रमशः लुंबिनी, बुद्धगया, वाराणसी, श्रावस्ती, सकाश्य नगर, राजगृह, वैशाली, और कुश नगर है।

तेईसवाँ पर्व

—(:o:)—

रामराज्य और रामस्तूप।

बुद्धदेव के जन्मस्थान से ५ योजन पर राम नामक जनपद मिला। जनपद के राजा को बुद्धदेव के धातु का एक भाग मिला था। लौट कर उसने एक स्तूप बनवाया था। उसका नाम रामस्तूप है। स्तूप के पास एक ह्रद है। ह्रद मे एक नाग रहता था। वह स्तूप की रक्षा और निरंतर पूजा करता था। जब राजा अशोक संसार मे आया तो उसने चाहा कि आठों स्तूप तोड़वा कर ८४००० स्तूप बनवाएँ। ७ स्तूप गिरवा कर उसने इस स्तूप को गिरवाना चाहा। नाग सदेह प्रगट हुआ, अशोक राजा को अपने घर ले गया और पूजा के उपकरण दिखा उसने राजा से कहा, यदि इससे उत्तम रूप से पूजा कर सको तो (स्तूप) गिरा दो, सब ले जाओ मैं झगड़ता नहीं। राजा समझ गया कि पूजा के ऐसे उपकरण संसार मे नहीं मिलेंगे। इस पर वह लौट आया।

---

* यह जनपद कपिलवस्तु और कुशनगर के मध्य में पड़ता था। संभवतः यह गोरखपुर के आसपास का कोई स्थान होगा। गोरखपुर के पास अनेक छोटी छोटी झीलें हैं। अधिक सभव है कि वह झील जिसका होना फाहियान ने स्तूप के पास लिखा है उन्हीं में से कोई हो। बाणगंगा कपिलवस्तु और रामराज्य के बीच की सीमा मानी गई है, उसीके आस पास उसे कहीं होना चाहिए।

वह स्थान जंगल हो गया, कोई पानी और झाड़ू देने को न रहा। हाथियों का एक जूथ अपने सूँड में जल भरकर यथा-विधि भूमि पर छिड़कता और भांति भांति के फूल और गंधद्रव्य चढ़ाता रहा।

एक देश का 'मार्गी' यात्री स्तूप के प्रणिपात को गया। हाथियों को देख बहुत डरा। पेड़ पर चढ़ कर छिप गया। देखा हाथी यथाविधि पूजा करते हैं। मार्गी को बहुत दु:ख हुआ—यहां संघाराम नहीं कि स्तूप की पूजा हो सके, हाथी पानी और झाड़ू देते हैं। मार्गी परिग्रह छोड़ सामनेर बन कर लौटा। उसने अपने हाथों घास और पेड़ साफ किए। स्थान को ठीक और साफ सुथरा बनाया। उपदेश बल से इस जनपद के राजा से भिक्षुओं के लिये उसने स्थान बनवाया और आप मठ का नायक बना। अब भिक्षु रहते हैं। यह समीप की घटना है। उस समय से अब तक श्रमण मठ के नायक होते आते हैं।

चौबीसवाँ पर्व

—:o:—

परिनिर्वाण स्थान

यहां से पूर्व ३ योजन चलकर राज-कुमार के छंदक के साथ श्वेत अश्व लौटाने का स्थान पड़ा। वहां स्तूप बना था।

वहां से ४ योजन चलकर अंगार स्तूप* पर पहुँचे। वहां संघा-राम है। पूर्व १२ योजन और चलकर कुशीनार † नगर मे पहुँचे। नगर के उत्तर शाल के (दो) वृक्षों के वीच निरंजना नदी के किनारे पर भगवान के उत्तर शिर कर के परिनिर्वाण प्राप्त करने का स्थान है, सुभद्र यती के पीछे अर्हत होने का स्थान है, सुवर्ण की नाव मे भगवान की ७ दिन तक पूजा करने का स्थान है, वज्रपाणि ‡ के सुवर्ण गदा फेकने का स्थान है और ८ राजाओं के धातु का अश लेने का स्थान है—सव जगह स्तूप वने हैं, संघाराम हैं। अव तक हैं। नगर में वस्ती कम और विरल है। केवल कुछ तितर वितर श्रमणो के घर हैं।

यहां से पूर्व-दक्षिण १२ योजन चलकर वहां पहुँचे जहां लिछिवि लोगों ने (जव) वुद्धदेव के साथ परिनिर्वाण स्थान पर चलने की इच्छा की और वुद्धदेव ने न माना तो वे वुद्धदेव के साथ लगे चले, और नहीं लौटे, तो वुद्धदेव ने एक बड़ा हृद

---

* यह स्तूप मौर्यों का वनाया हुआ पिप्पली कानन मे था। वुद्धदेव के परिनिर्वाण पर जव उनके शरीर के सव धातुओ का विभाग हो गया था तो मौर्य्य लोग पहुँचे। उन्हें द्रोण ने चिता के अगार दिए थे, उन्हे लाकर उन लोगों ने अपने यहा स्तूप वनवाया था।

† यह स्थान गोरखपुर के जिले में कसया जंटी के पास है। वहां एक वृहत् मूर्ति उत्तर सिर किए एक मंदिर मे लेटी है और उसके पास ही थोड़ी दूर पर चैत्य स्तूप भी है।

‡ संभवत मल्लराज का नाम।

प्रगट किया जिसे वे पार न कर सके, फिर बुद्धदेव ने अपना भिक्षापात्र चिह्न स्वरूप* देकर उन्हें घर लौटाया। इस जगह पत्थर का एक स्तंभ बना है, उसपर यह कथा लिखी है।

पचीसवाँ पर्व

—:०:—

वैशाली

यहा से पूर्व १० योजन चलकर वैशाली जनपद मे पहुँचे। वैशाली † नगर के उत्तर एक महावन ‡ कूटागार विहार है—बुद्धदेव का निवास स्थान है—आनद का अर्द्धांग स्तूप है। नगर मे

---

* हिंदी में इसे 'चिन्हावर' कहते है।

† यह नगर मुजफ्फरपुर जिले मे था। अब इसका खडहर बेसर गाव के पास बखिरा में है। यहा अब तक अशोक का एक स्तंभ ३२ फुट ऊँचा है। खडहर को राजा विशाल का गढ़ कहते है। यह १५८० फुट लंबा और ७५० फुट चौडा है। सुयेन-च्वाग ने इसे ४ ली से ५ ली तक लंबा चौडा लिखा है। अबुलफजल ने भी बेसर गांव का उल्लेख किया है।

‡ इसे कोई कोई आरण्यद्वितल विहार लिखते है। लेगी ने इसे Double galleried Vihar" लिखकर नोट में लिखा है—It is difficult to tell what was the peculiar form of this vihar from which it got its name, something about the construction of its door or cup boards or galleries अर्थात् यह समझ में नही आता कि यह कैसा विहार था। महावंश में इसे महावन और अन्यत्र महावन कूटागार लिखा है।

अंबपाली वेश्या रहती थी, उसने बुद्धदेव का स्तूप बनवाया--अब तक वैसा ही है। नगर के दक्षिण ३ ली पर अंबपाली वेश्या का बाग है जिसे उसने बुद्धदेव को दान दिया कि वे उसमे रहें। बुद्धदेव परिनिर्वाण के लिये जब सब शिष्यों सहित वैशाली नगर के पश्चिम द्वार से निकले तो दहिनी ओर वैशाली नगर को देख कर शिष्यों से कहा यह मेरी अंतिम * विदा है। पीछे लोगो ने वह स्तूप बनवाया।

नगर से पश्चिमोत्तर ३ ली पर एक स्तूप है, नाम है 'धनुर्बाण-त्याग।' नाम पढ़ने का कारण यह है कि पूर्व काल मे गंगा के किनारे एक जनपद का एक राजा था। राजा की छोटी रानी एक मांस-पिंड जनी। बड़ी रानी ने द्वेष से कहा कि तू कुलक्षण जनी और तुरत एक लकड़ी की मजूषा मे रख कर उस पिड को उसने गंगा मे फेंक दिया। उतार पर एक जनपद का राजा सैर करने निकला था। पानी मे उसने लकड़ी की मंजूषा देखी। खोला तो देखा उसमे एक सहस्र लड़के भरे पूरे न्यारे न्यारे हैं। राजा ने खिला पिला कर उनको सयाना और बड़ा किया। वे बड़े साहसी, प्रचड, समर मे द्वेषियों के ध्वसकारी थे। होते होते अपने बाप—

---

* लेगी ने इसका अनुवाद "Here I have taken my last walk" और बील ने "In this place I have performed the last religious act of my earthly career" तथा अन्यो ने "This is the last place I shall visit" किया है पर हमारे मत से यह मेरी अतिम विदा है—This is my last departure (from here) यह ठीक है।

राजा—के जनपद पर उन्होने चढ़ाई की। राजा इससे बहुत घबड़ाया। छोटी रानी ने घबड़ाने का कारण पूछा। राजा ने उत्तर दिया कि उस राजा के एक सहस्र पुत्र अतुल साहसी और प्रचंड हैं। मेरे जनपद पर आक्रमण करना चाहते हैं। इसी से दुखी हूँ। छोटी रानी ने कहा राजा घबड़ाओ मत। नगर के पूर्व की दीवार मे एक ऊँचा बारजा बनवा दो, जब शत्रु आवेंगे मैं बारजे पर से सब को लौटा दूंगी। राजा ने जैसा कहा था किया। शत्रु आए। छोटी रानी बारजे से बोली, तुम मेरे बेटे हो, क्यो अनरीति करते हो। शत्रु बोले, तू कौन है जो कहती है कि हमारी माता है। छोटी रानी ने कहा, विश्वास न हो तो मुँह खोल कर इस ओर ताको। छोटी रानी ने दोनों हाथों से स्तनो को दबाया, प्रति स्तन से ५०० धारा निकली और हजारों लड़कों के मुँह मे पड़ी। शत्रु जान गए कि यह माता है और उन्होने धनुष-बाण डाल दिए। दोनों पिता—राजा—इस पर ध्यान करने लगे और प्रत्येक बुद्ध हो गए। दोनों प्रत्येक बुद्धो के स्तूप विद्यमान हैं।

पीछे जब भगवान ने बोधि प्राप्त कर शिष्यों को इस धनुर्बाण-त्याग' स्थान को बताया, तब लोगों ने इस स्थान को जाना और स्तूप बना कर नाम धरा। वे हजारों छोटे लड़के भद्रकल्प के हजार बुद्ध हुए। बुद्धदेव ने इसी धनुर्बाणत्याग स्तूप के पास जीवनाशा त्यागी। बुद्धदेव ने आनंद से कहा, मैं तीन मास मे परिनिर्वाण प्राप्त करूंगा। मार राजा ने आनंद को मोहित कर लिया और वह भगवान से संसार मे अधिक रहने के लिये न कह सका।

यहां से पश्चिम तीन चार ली पर एक स्तूप* है। बुद्धदेव के परिनिर्वाण से सौ वर्ष पीछे वैशाली के भिक्षु ने विनय के दस शील के विरुद्धाचरण किया। यह कहा कि यह बुद्धदेव के वचनानुसार है। इस पर सब अर्हत और शीलस्थ भिक्षु ७०० श्रमणों ने मिलकर विनय के ग्रंथों का पारायण किया और मिलाया। पीछे लोगों ने इस स्थान पर स्तूप बना दिया, वह अब तक वर्तमान है।

छब्बीसवाँ पर्व

आनंद का परिनिर्वाण स्थान

इस स्थान से ४ योजन चलकर पांच नदियों के संगमां† पर पहुँचे। आनंद मगध से वैशाली परिनिर्वाण के लिये चले।

---

* यह द्वितीय धर्मसंघ का स्थान है। यहां बुद्धदेव के परिनिर्वाण से सौ वर्ष पीछे विनय पिटक का पारायण किया गया था। विनय के दश नियमों के उल्लंघन करनेवाले भिक्षु 'वज्जिपुत्तका' कहलाते हैं। इनका नायक आनंद का शिष्य 'यश' वा 'यशद' था। दश शील ये हैं—पांच साधारण निषेध जैसे (१) जीवहत्या (२) अपहरण (३) व्यभिचार (४) मिथ्याभाषण और (५) सुरापान। और पांच व्यसन जैसे (१) अकाल-भोजन (२) नृत्य-गीतादि-अनुरक्ति (३) गंधमाल्यादि-व्यवहार (४) आराम शय्या-शयन (५) सुवर्ण-रौप्य-ग्रहण।

† यह वही स्थान है जहां सोन-गंडकादि गंगाजी में सोनपुर के पास मिली हैं।

देवताओ ने अजातशत्रु को सूचना दी। अजातशत्रु तुरत रथ पर चढ़ सेना साथ लिए नदी पर पहुँचा। वैशाली के लिछिवियों ने आनंद का आगमन सुना, लेने को चले, नदी पर पहुँचे। आनद ने सोचा, आगे बढ़ता हूं तो अजातशत्रु बुरा मानता है, लौटता हूं तो लिछिवी रोकते हैं। निदान नदी के बीच मे ही समाधितेजाग्नि मे उन्होंने परिनिर्वाण लाभ किया। शरीर का अंश दो भागो मे विभक्त कर एक एक भाग एक एक किनारे पहुँचाया गया। दोनों राजाओं को आधा आधा शरीरांश मिला। वे लौट आए और उन्होंने स्तूप बनवाया।

सत्ताईसवाँ पर्व

पाटलिपुत्र

नदी उतर कर दक्षिण १ योजन उतर कर* मगध जनपद के पुष्पपुर (पाटलिपत्तन) मे पहुँचे। पुष्पपुर अशोक राजा की राजधानी था। नगर मे अशोक राजा का प्रासाद और सभाभवन है। सब असुरों के बनाए हैं। पत्थर चुन कर भीत और द्वार बनाए हैं। सुदर खुदाई और पच्चीकारी है। इस लोक के लोग नहीं बना सकते। अब तक वैसे ही हैं।

---

* नीचे की ओर चलकर अर्थात् नदी के उतार की ओर जाकर।

राजा अशोक के एक छोटा भाई था। अर्हतपद प्राप्त हुआ। गृध्रकूट पर्वत पर रहता था। एकांत और शांत स्थान में मग्न रहता था। राजा अंतःकरण से उसका मान करता था। राजा ने चाहा कि आमंत्रित कर उसे घर लावे और खिलावे। पर्वत के एकांत-वास के आनंद के कारण उसने निमंत्रण स्वीकार नहीं किया। राजा ने भाई से कहा, निमंत्रण स्वीकार मात्र करो, नगर के भीतर पर्वत वनवाए देता हूं। तदनुसार भोज की सामग्री की गई। सब असुरों का आह्वान किया गया, घोषणा कर दी गई कि कल के लिये मेरा निमंत्रण स्वीकार करो। आसन वैठने को नहीं है। अपना अपना लेते आना। दूसरे दिन सब महासुर आसन के लिये वड़ी वड़ी शिला लेकर आए जो (समूची) दीवार के वरा-वर चार पाँच पग लंबी चौड़ी थी। भोज हो गया तो असुरों से वड़ी वड़ी शिला चुनवा कर पर्वत वनवा दिया। पर्वत के पाद में पाँच वड़ी शिलाओं से एक गुहा भी वनवा दी—३० हाथ लंबी, २० हाथ चौड़ी और १० हाथ से अधिक ऊँची थी।

एक महायानानुयायी ब्राह्मण-कुमार राधास्वामी नामक इस नगर में था। वह विशुद्ध विवेक और पारदर्शी ज्ञान-सम्पन्न था तथा विमल आचार से रहता था। जनपद का राजा उसका गुरु-वत् आदर और व्यवहार करता था। वातचीत करने जाता तो सामने वैठने का साहस न करता। राजा श्रद्धा भक्ति से कभी हाथ छूता तो हाथ छूटते ही ब्राह्मण झट पानी से उसे धो डालता था। ५० वर्ष से अधिक की आयु थी। सारे जनपद में मान

था। इस एक मनुष्य से बौद्ध धर्म की सर्वत्र विख्याति थी। अन्य धर्मावलंबी श्रमणो को छू नही सकते थे।

अशोक के स्तूप के निकट महायान का एक संघाराम बना है। वहुत सुंदर और भव्य है। यही हीनयान का भी विहार है। सब मे सात आठ सौ भिक्षु रहते हैं। आचार विचार, पठन-पाठन विधि दर्शनीय है। चारों ओर के महात्मा श्रमण, विद्यार्थी, सत्य और हेतु के जिज्ञासु इस स्थान का आश्रय लेते हैं। यहां एक ब्राह्मण-कुमार आचार्य्य है, नाम मञ्जुश्री है। जनपद के महात्मा श्रमण और हीनयान के भिक्षु उसे आदर की दृष्टि से देखते हैं और इस संघाराम मे आते हैं।

मध्यदेश मे इस जनपद का यह नगर सब से बड़ा है। अधि-वासी सम्पन्न और समृद्धिशाली हैं। दान और सत्य मे स्पर्द्धालु हैं। प्रति वर्ष रथयात्रा होती है। दूसरे* मास की आठवीं तिथि को यात्रा निकलती है। चार पहिये के रथ बनते हैं। यह यूप पर ठाटी जाती है जिसमें धुरी और हर्से लगे रहते हैं। यह २० हाथ ऊँचा और स्तूप के आकार का बनता है। ऊपर से सफेद चम-कीला ऊनी कपड़ा मढ़ा जाता है। भांति भाति की रँगाई होती है। देवताओ की मूर्तियां सोने चांदी और स्फटिक की भव्य बनती हैं। रेशम की ध्वजा और चांदनी लगती है। चारों कोने कलगियां लगती हैं। बीच मे बुद्धदेव की मूर्त्ति होती है और पास

---

* अन्य अनुवादको ने इसे "प्रति वर्ष महीने की अष्टमी के दिन" लिखा है जो मूल के विरुद्ध है।

मे बोधिसत्व खड़ा किया जाता है। बीस रथ होते हैं। एक से एक सुंदर और भड़कीले, सब के रंग न्यारे। नियत दिन आस पास के यती और गृही एकट्ठे होते हैं। गाने बजानेवाले साथ लेते हैं। फूल और गंध से पूजा करते हैं। फिर ब्राह्मण आते हैं और बुद्धदेव को नगर मे पधारने के लिये निमंत्रित करते हैं। पारी पारी नगर में प्रवेश करते हैं। इसमे दो रात बीत जाती हैं। सारी रात दिया जलता है। गाना बजाना होता है। पूजा होती है। जनपद जनपद मे ऐसा ही होता है। जनपद के वैश्यो के मुखिया लोग नगर मे सदावर्त और औषधालय स्थापित करते हैं। देश के निर्धन, अपंग, अनाथ, विधवा, निःसंतान, लूले, लंगडे, और रोगी लोग इस स्थान पर जाते हैं, उन्हे सब प्रकार की सहायता मिलती है, वैद्य रोगों की चिकित्सा करते हैं, वे अनुकूल पथ्य और औषध पाते हैं, अच्छे होते हैं तब जाते हैं।

अशोक राजा ने सातों स्तूप ८४००० स्तूप बनवाने के लिये गिरवाए। पहला महास्तूप जो बनवाया नगर के दक्षिण ३ ली से अधिक दूरी पर है। इस स्तूप के सामने बुद्धदेव का पद-चिह्न है। वहां विहार बना है। द्वार उत्तर ओर है। स्तूप के दक्षिण ओर पत्थर का एक स्तंभ है, घेरे मे चौदह पंद्रह हाथ और ऊँचाई मे ३० हाथ से अधिक है, उस पर यह वाक्य खुदा है "अशोक राजा ने जंबूद्वीप चारों ओर के भिक्षुसंघ को दान कर दिया, फिर धन दे कर ले लिया। यह तीन बार किया।" स्तूप के उत्तर तीन चार सौ पग पर अशोक राजा ने नेले नगर

वसाया। नेले नगर मे पत्थर का एक स्तंभ है, ३० हाथ से अधिक ऊँचा—ऊपर सिंह है। स्तंभ पर खुदा है 'नगर बसने का हेतु, वर्ष, तिथि और मास'।

अट्ठाईसवाँ पर्व

—:०:—

राजगृह

यहा से पूर्व-दक्षिण ९ योजन चले। एक छोटी और तुच्छ पत्थर की पहाड़ी पर पहुँचे। पहाड़ी के छोर पर एक पत्थर की* गुफा है। गुफा दक्षिणाभिमुखी है। बुद्धदेव इसमे बैठे थे। देवराज शक्र दिव्य गंधर्व पच (शिखा) को लेकर आए कि बुद्धदेव को गाना सुनावे। शक्र ने ४२ प्रश्न बुद्धदेव से किए, उँगली से पत्थर पर एक एक रेखा खींच कर। रेखाएं अब तक हैं, एक संघाराम भी है।

यहां से पश्चिम-दक्षिण एक योजन चलकर नाल† ग्राम मे पहुँचे। सारिपुत्र का यह जन्मस्थान है, यहां ही सारिपुत्र लौट-

---

* यह स्थान गया से ३६ मील पर गिरियक नामक गांव के पास है। पचाना नदी के किनारे पर पर्वत की दो चोटियां है। जो उत्तर ओर है वह कुछ अधिक ऊँची है उसके माथे पर एक विहार और अन्य भवनों के खंडहर पड़े है। सुयेन-च्वांग ने इसे इंद्रशील गुहा लिखा है।

† नालंद। इसे बडगांव कहते है।

कर परिनिर्वाण प्राप्त हुआ था। इस स्थान पर स्तूप बना है और अब तक वर्तमान है।

यहां से पश्चिम एक योजन चलकर राजगृह के नए* नगर मे पहुँचे। नया नगर अजातशत्रु राजा का बसाया है। इस मे दो संघाराम हैं। नगर के पश्चिमी द्वार से ३०० पग पर अजातशत्रु राजा ने बुद्धदेव के धातु के अंश लेकर उस पर एक स्तूप बनवाया है। वह ऊँचा, बृहत्, संभ्रमाकर्षक और सुदर है। नगर के दक्षिण निकल कर चार ली पर दक्षिण ओर से एक घाटी से होकर पॉच पर्वतों के दून मे पहुँचे। पॉचों पर्वत किनारे किनारे नगर के प्राचीर की भांति खड़े हैं। यहां विंबिसार राजा का प्राचीन† नगर था। नगर पूर्व-पश्चिम पॉच छ ली और दक्षिण-उत्तर सात आठ ली था। सारिपुत्र और मौद्गलायन इसी स्थान मे उपसेन ‡ से मिले थे। निर्ग्रंथ § ने यही अग्निकुंड और विषाक्त ओदन बना बुद्धदेव को आमंत्रित किया था और अजातशत्रु राजा ने मदोन्मत्त काले हाथी को यही बुद्धदेव को मारने के लिये छोड़ा था। नगर के पूर्वोत्तर कोण मे जीवक ने अंबपाली के बाग मे एक विहार बनवाया था और बुद्धदेव को

---

* यह प्राचीन राजगृह से उत्तर दिशा में ३।४ मील पर था।

† इस नगर का खंडहर अब तक पाँचों पर्वतों के मध्य है। दीवालों के चिह्न अब तक विद्यमान है।

‡ अश्वजित का नाम। वह बुद्धदेव का शिष्य था।

§ एक तीर्थंकर का नाम। बुद्धदेव के आमंत्रण की बात किसी अन्य ग्रंथ मे नहीं मिलती।

१२५० शिष्यों सहित आमंत्रित कर दान दिया था। अब तक वर्तमान है। नगर के भीतर सुनसान है, कोई मनुष्य नहीं है।

उनतीसवाँ पर्व

—:o:—

गृध्रकूट पर्वत

घाटी मे होकर पर्वत के किनारे किनारे से पूर्व-दक्षिण ओर १५ ली चढ़ कर गृध्रकूट* पर्वत पर पहुँचे। चोटी पर पहुँचने से ३ ली इधर ही एक पत्थर की कदरा है। दक्षिणाभिमुखी है। बुद्धदेव यहां बैठ कर ध्यान कर रहे थे। पश्चिमोत्तर दिशा मे ३० पग पर एक और कदरा है, आनंद उसमें बैठा ध्यान करता था। देव मार (पिसुन) गिद्ध का रूप धर (आया) (और) कदरा के सामने बैठा। आनंद को डराया। बुद्धदेव अलौकिक शक्ति से जान गए, पत्थर फोड़ कर उन्होंने हाथ निकाला और आनंद का कंधा ठोका। तत्क्षण भय जाता रहा। पक्षी का पदचिह्न, हाथ (निकलने) का दरार अब तक है। इसीसे गृध्रकूट नाम पड़ा।

कदरा के सामने चारों बुद्धो के बैठने के स्थान हैं। अनेक अर्हतों के अलग अलग बैठ कर ध्यान करने की कदराएं हैं, सब

---

* किसी किसी ने यह लिखा है कि गृध्रकूट का आकार गृध्र पक्षी के सदृश है।

कई सौ होंगी। बुद्धदेव गुफा के सामने पूर्व से पश्चिम चंक्रमण कर रहे थे। देवदत्त ने पर्वत के उत्तर के करार से पत्थर चलाया। बुद्धदेव के पैर के अंगूठे मे लगा। पत्थर अब तक है* ।

बुद्धदेव के धर्मोपदेश का मडप गिर गया है केवल ईंटो की नीव शेष रह गई है। इस पर्वत का शिखर हरा भरा और खड़ा है। यह पाँचो पर्वतों मे सब से ऊँचा है। फाहियान नए नगर मे गंध, फूल, तेल, दीप मोल लेकर वहां के दो भिक्षुओ से लिवा लाया था। फाहियान गृध्रकूट पर पहुँचा। फूल और गध से पूजा की। रात मे दीप जलाया। उसे बहुत दुःख हुआ। आँसू रोके। कहा बुद्धदेव ने यहां सुरंगम (सूत्र) का उपदेश किया। फाहियान जनमा, बुद्धदेव को मिल न सका। पदचिह्न और रहने के स्थानो के अतिरिक्त और कुछ न देखा। फिर पत्थर की कंदरा के सामने सुरंगम (सूत्र) गाया। एक रात रहा और नए नगर को लौट आया।

---

* जातक मे लिखा है कि राजगृह मे पहले शिवयान नामी वैश्य था। उसके पुत्र शिवम्मेथि ने पिता के मरने पर अपने सौतेले भाई को पर्वत से गिरा कर मार डाला था और सारा धन ले लिया था। वही शिवम्मेथि बहुत जन्म पीछे बुद्धदेव गौतम हुआ और उसके सौतेले भाई देवदत्त ने पूर्व जन्म का बदला चुकाने के लिये उसे पत्थर मारा था, जो बुद्धदेव के अँगूठे में लगा था।

तीसवाँ पर्व

—:०:—

शतपर्णी गुफा

प्राचीन नगर से निकल उत्तर ओर लगभग ३०० पग चलने पर सड़क के पश्चिम करंडवेणुवन विहार* पडता है । अब तक बना है । भिक्षु सघ सफाई करते और पानी देते हैं ।

इस विहार से उत्तर दो तीन ली पर श्मशान है । श्मशान चीनी भाषा मे मुर्दा गाड़ने के खेत को कहते हैं ।

पर्वत को दक्षिण देकर पश्चिम ओर चलने पर ३०० पग पर एक गुहा है । नाम पिप्पल गुहा । बुद्धदेव भोजनानतर यहां बैठ कर ध्यान किया करते थे ।

पश्चिम पांच छ ली जाने पर पर्वत के उत्तर आड़ मे एक और गुहा है । नाम शतपर्णी । बुद्धदेव के निर्वाणानंतर ५०० अर्हतों ने इकट्ठे होकर इस स्थान पर सूत्रो का संग्रह किया था । जब सूत्रो का पारायण होने लगा तीन ऊँचे आसन बने थे और

---

* इसे सब अनुवादको ने करंडवेणु वन लिखा है पर वास्तव मे इसका नाम बौद्ध ग्रंथों से 'कालांतक' जान पडता है। कहते है कि बिंबिसार ने जब वह युवराज था इसके स्वामी से इसे बलपूर्वक छिया था । वह स्वामी मरकर सर्प हो गया और उसी बाग मे रहता था । एक बार उसने बिंबिसार पर जब वह राजा था और उस बाग मे गया था चोट की थी । इसी कारण उसका नाम कालांतक वन पड़ा, पीछे वह बुद्धदेव के लिये रहने को दिया गया और वहां विहार बना ।

अच्छे प्रकार अलंकृत किए गए थे। सारिपुत्र बाईं ओर और मौद्गलायन दहिनी ओर बैठे। ५०० की गणना मे एक अर्हत की कमी थी। आनंद बाहर था, भीतर आने न पाया। यहां स्तूप वनाया गया जो अव तक है।

पर्वत के किनारे किनारे भी वहुत से अर्हतों के बैठ कर ध्यान करने की अनेक गुफाएँ हैं। पुराने नगर से उत्तर-पश्चिम निकल कर तीन ली उतरने पर देवदत्त की गुफा पड़ती है। इस से ५० पग पर एक वडी चौकोर शिला है। उस पर एक भिक्षु ने चक्रमण करते विचारा 'देह अनित्य है, दुःखमय और अलीक, पवित्र नहीं है। मैं इस देह से तंग आगया हूं, इसने मुझे बहुत क्लेश दिया।' यह विचार कर उसने आत्महत्या करने के लिये छूरी उठाई। फिर मन मे आया कि भगवान ने आत्मघात का निषेध किया है। फिर मन में आया—'अच्छा, किया तो है पर मैं अब तीनों दुःखदायी शत्रुओं को* मारूंगा।' फिर छूरी ले गला काटने लगा, छूरी के गले मे प्रवेश करते ही श्रोतापन्न, आधा कटते कटते अनागामी और सारा कटते कटते वह अर्हत हो गया और निर्वाण पद को प्राप्त हुआ।

---

* राग, द्वेष और अविद्या।

इकतीसवाँ पर्व

—.o:—

गया

यहां से पश्चिम ४ योजन चलकर गया* नगर मे पहुँचे। नगर के भीतर सुनसान और उजाड़ है। और दक्षिण १२ ली चलकर बोधिसत्व के ६ वर्ष घोर तप करने के स्थान पर पहुँचे। इस स्थान पर जंगल था।

यहां से पश्चिम ३ ली चलकर उस स्थान पर पहुँचे जहां बुद्धदेव स्नान के लिये† पानी मे धँसे थे और एक देवता ने वृक्ष की डाली झुकाई थी, जिसे पकड़ कर वे जलाशय से निकले थे।

उत्तर २ ली पर गाँव की लड़कियों ने जहां बुद्धदेव को खीर दी थी, वह स्थान है। इससे उत्तर २ ली पर बुद्धदेव ने एक बड़े पेड़ के नीचे पत्थर पर पूर्वाभिमुख बैठ कर खीर खाई थी। वृक्ष और शिला अब तक हैं। शिला की लंबाई चौड़ाई ६ हाथ और उँचाई २ हाथ है। मध्य देश मे शीतोष्ण की समता है। वृक्ष कई सहस्र क्या दस सहस्र वर्ष तक रहते हैं।

यहां से पूर्वोत्तर आधे योजन पर एक पत्थर की कंदरा पड़ती है। बोधिसत्व इसमे जाकर पश्चिमाभिमुख पालथी मार-

---

* यह स्थान गया नगर से पूर्व पश्चिम है और बुद्धगया कहलाता है।

† नीरंजना वा नीलांजना नदी में स्नान किया था।

कर वैठे थे। मन मे कहा कि जो मुझे बोधिज्ञान प्राप्त होने को हो तो अलौकिक प्रमाण मिले। शिला की भित्ति पर बुद्धदेव की छाया देख पड़ी। तीन हाथ से अधिक ऊँची थी। अब तक चमकती है। उस समय आकाश और पृथिवी मे वड़ा कंप हुआ। सारे देवता आकाश से स्पष्ट वोल उठे "यह स्थान नही है जहां आकर सारे बुद्धों मे से कोई भी वोधिज्ञान प्राप्त हुआ हो। यहां से पश्चिम-दक्षिण आधे योजन से कम पर जाकर (चल) पत्र वृक्ष* पड़ेगा, वहां जाकर सब बुद्ध वोधिज्ञान प्राप्त होते हैं।" सारे देवताओ ने यह कह उस ओर का मार्ग दिखाया। वे गाते हुए आगे आगे चले। वोधिसत्व उठकर चले। वृक्ष से ३० पग पर एक देवता ने कुश (घास) दिया। वोधिसत्व लेकर आगे चले। १५ पग जाकर ५०० हरे पक्षी (तोते) उड़ते हुए आए। उन्होने वोधिसत्व की तीन परिक्रमा की और चले गए। वोधिसत्व चलपत्र वृक्ष के नीचे पहुँचे। कुश विछाकर पूर्वाभिमुख वैठ गए। फिर मारराज ने तीन सुंदर स्त्रियां भेजी। वे उत्तर से आकर मोहित करने लगीं। मारराज दक्षिण से आकर मोहित करने लगा। वोधिसत्व ने पैर का अँगूठा पृथिवी में लगाया। मार भागा और पराजित हुआ। तीनों युवतियां जराग्रस्त वृद्धा हो गईं।

जहां छ वर्ष दुष्कर तप किया वहां तथा अन्य सब स्थानो

---

* फाहियान ने केवल पत्र लिखा है जिसे न समझ कर लेगी ने नोट में A palm tree, borassus flabellifera अर्थात् ताड लिखा है। संस्कृत में चलपत्र पीपल को कहते है।

पर पीछे लोगों ने जो स्तूप बनाए थे तथा मूर्तियां स्थापित की थी सब अब तक हैं।

जिस स्थान पर बुद्धदेव ने बोधिज्ञान लाभ कर सात दिन ध्यान किया—वृक्ष की ओर-और विमुक्ति आनंद अनुभव किया, जिस स्थान पर चलपत्र वृक्ष के नीचे पूर्व पश्चिम सात दिन चक्रमण किया, जिस स्थान पर सब देवताओ ने आकर सप्तरत्न का मंडप बनाया और बुद्धदेव की पूजा सात दिन की, जिस स्थान पर मुचलिंद अंधनाग ने सात दिन तक बुद्धदेव को आवेष्टन किया था, जिस स्थान पर बुद्धदेव न्यग्रोध वृक्ष तले चतुष्कोण शिला पर पूर्वाभिमुख बैठे थे, और ब्रह्मदेव ने आकर प्रार्थना की थी, जिस स्थान पर चारो महाराजों ने भिक्षापात्र दान किया, जिस स्थान पर ५०० वणिकों ने भुना हुआ आटा और मधु दिया था, जिस स्थान पर कश्यप भ्राताओं और उनके १००० शिष्यों को उपदेश किया—इन स्थानों पर स्तूप बने थे।

बुद्धदेव के बोधिज्ञान प्राप्त करने के स्थान पर तीन संघाराम हैं। सब मे श्रमण रहते हैं। अधिवासी भिक्षुसघ को सब आवश्यक पदार्थ दे देते हैं, किसी प्रकार की कठिनाई नहीं होती। वे विनय का यथार्थ पालन करते हैं। बैठने, उठने और संघ मे जाने के आचार व्यवहार उसी नियम के अनुसार हैं जैसे बुद्धदेव के समय में थे। संघ मे १००० वर्ष हुए वे अब तक चले आ रहे हैं। बुद्धदेव के परिनिर्वाण से चारों महास्तूप के स्थान हैं,

उन्हे सब जानते चले आ रहे हैं, कुछ विपर्य्यय नही हुआ है। चारों महास्तूप—बुद्ध का जन्मस्थान, बोधि-प्राप्ति-स्थान, धर्म-चक्र-प्रवर्तन स्थान और परिनिर्वाण स्थान हैं।

बत्तीसवाँ पर्व

—०—

राजा अशोक

अशोक राजा पूर्व जन्म में जब बालक था और मार्ग मे खेलता था शाक्य* बुद्ध भिक्षार्थ भ्रमण करते उसे मिले। बालक से मांगा। उसने एक मुट्ठी मिट्टी उठा कर बुद्ध को दी। बुद्ध ने लेकर जहां चंक्रमण करते थे भूमि पर डाल दी। इसका फल मिला, लौहचक्र का राजा जंबुद्वीप का राजा हुआ। राजा एक

---

* कोरिया की प्रति में कश्यप है। लेगी ने इसी को ठीक माना है पर यह भ्रम है। चीन का पाठ ठीक है। ग्रंथो में इस प्रकार लिखा है कि कभी बुद्धदेव आनंद के साथ भिक्षा को आ रहे थे। मार्ग मे लड़के खेलते थे, घरौना बना रहे थे। बुद्धदेव को देख एक लड़का हाथ मे धूलि ले कर भिक्षा देने आया। पास पहुँचने पर उनके पात्र तक नहीं पहुँच सकता था, निदान दूसरे बालक के कंधे पर सवार हो कर उनके पात्र में उसने धूलि डाल दी। बुद्धदेव ने आनंद से कहा कि इस मिट्टी को पानी मे मिला कर चैत्य पर लेप कर दो। और बालक को उन्होने आशीर्वाद दिया कि मेरे परिनिर्वाण से सौ वर्ष पीछे तू राजा होगा और ८४००० स्तूप बनवावेगा।

वेर जबुद्वीप मे यात्रा मे था। उसने लौहचक्रवाल मे दो पर्वतों के मध्य नरक देखा जो पापियों की यातना का (स्थान) था। वंधुओं और अमात्यों से पूछा यह क्या है ? उत्तर मिला असुर-राज यमराज का पापियों की यातना (का स्थान)। राजा ने मन मे कहा असुरराज यमराज तो पापियों की यातना के लिये नरक बनावे, मैं मानवाधिप पापियों की यातना के लिये नरक न बन-वाऊँ। मंत्रियों से कहा कि किस से मैं नरक बनवाऊँ, (किसे) पापियों की यातना का अध्यक्ष करूं। मंत्रियो ने उत्तर दिया "केवल अति चांडाल (दस्यु) मनुष्य इसे निर्माण करा सकता है।" राजा ने मंत्रियो को भेजा कि चांडालकर्मा मनुष्य खोजो। उन्होने एक जलाशय के तीर एक मनुष्य देखा जो विशाल, प्रचंड, कृष्ण वर्ण, कपिश केश, और विडालाक्ष था, पैर से मछली फँसाता मुँह से पशु पक्षियों को बुलाता और उनके आते ही प्रहार करता और मारता कि एक भी न बचते। इस मनुष्य को पाकर वे राजा के पास ले गए। राजा ने गुप्त रूप से आज्ञा दी, तू चारों ओर से स्थान पर ऊँची प्राचीर बनवा, भीतर भांति भांति के फूल फल लगा, सुदर घाटवाला सरोवर बनवा, सर्वतोभावेन मनोहर और चित्ताकर्षक कि लोग चाव से देखने दौड़े, कपाट सुदृढ़ बन-वाना, लोग जायँ तो चट पकड़ लेना, भांति भांति की यातना पापियों को देना, अवरुद्ध करना, बाहर कदापि निकलने न देना। (और क्या) मैं भी कदापि जाऊँ तो मुझे भी पापियो की

यातना देना, वैसे ही अवरुद्ध करना। अब मैंने तुझे नरक का अध्यक्ष बनाया।

फिर एक भिक्षु भिक्षा मांगता हुआ द्वार के भीतर गया। नरकाध्यक्ष ने देखा और उसे पकड़ कर पापियों की यातना देनी चाही, भिक्षु भयभीत हुआ। प्रार्थना की कि मध्याह्न के भोजन का अवकाश दो। इसी अंतर एक और मनुष्य आया, नरकाध्यक्ष ने कोल्हू मे डाल दिया और पेरा। लाल फेन बह निकली। भिक्षु को यह देख मन मे ज्ञान उत्पन्न हुआ कि देह नित्य नहीं, दुःखमय, असत् और जल के फेन वा बबूले के सदृश है। वह तुरंत अर्हत पद प्राप्त हो गया। फिर नरकाध्यक्ष ने उबलते पानी के कड़ाह मे उसे डाल दिया पर भिक्षु प्रसन्नचित्त और शांत रहा, आग बुझ गई, पानी का कड़ाह ठंढा हो गया, भीतर कमल का पुष्प उत्पन्न हुआ, उस पर भिक्षु आसीन था। तदनंतर नरकाध्यक्ष ने दौड़कर राजा को सूचना दी कि नरक मे यह अनहोनी बात हुई। महाराज चलकर देखें। राजा ने कहा, मैं पहले प्रतिज्ञा कर चुका हूं, अब जा नहीं सकता। नरकाध्यक्ष ने कहा, यह छोटी बात नही है। महाराज को शीघ्र चलना चाहिए। पूर्व की प्रतिज्ञा छोड़िए। राजा साथ भीतर गया तो भिक्षु ने राजा को धर्मोपदेश किया। राजा ने सुना, विश्वास किया और वह मुक्त हुआ। उसने नरक का ध्वंस कर दिया। पूर्वकृत दुष्कर्मों का पश्चात्ताप किया। तब से वह त्रिरत्न का विश्वास और मान करने लगा। नित्य

चलपत्र वृत्त के नीचे जाता, पापदेशना कर के पश्चात्ताप करता। उसने अष्टांग (धर्म) को ग्रहण किया।

राजा की महारानी ने पूछा कि राजा नित्य कहां जाता है। बंधुओं और मन्त्रियों ने उत्तर दिया कि चलपत्र वृत्त तले जाता है। रानी ने देखा कि राजा नहीं है। आदमी भेजा, पेड़ कटवा डाला। राजा आया तो देखते ही शोक से मूर्छित हो भूमि पर गिर पड़ा। मन्त्रियों ने मुँह पर पानी का छींटा दिया, बडी देर मे चेत आया। राजा ने चारो ओर ईंट चुनवा दी, सौ घड़े दूध वृत्त के मूल मे दिए और आप चौरग भूमि पर पड़ा। उसने शपथ की कि वृत्त न जीया तो मैं भी न उठूंगा। यह शपथ करने के उपरांत वृत्त मूल से निकलने लगा और अब तक बढ़ता जा रहा है। अब १०० हाथ के लगभग ऊँचा है।

तेंतीसवाँ पर्व

—:o.—

कुक्कुटपाद

इस स्थान से दक्षिण ३ ली चलकर एक पर्वत पर पहुँचे। नाम कुक्कुटपाद*। महाकश्यप अब तक इस पर्वत मे रहते हैं।

---

* जनरल कनिंगहम ने कुटकीहार के उत्तर की एक पहाटी को कुक्कुटपाद लिखा है। डा० ष्टीन साहब का मत है पुनावां से दो मील दक्षिण पर हर्सा (सोमनाथ) पहाड़ी कुक्कुटपाद है पर बाबू रखालदास

पर्वत की दरार मे प्रवेश कर गए हैं। प्रवेश के स्थान मे मनुष्य की समाई नहीं है। नीचे जाकर दूर किनारे पर एक बिल है। कश्यप सदेह उसमे हैं। बिल पर कश्यप ने हाथ धोया था। आस पास के लोगों के सिर में घाव लगता है तो वे यहां की मिट्टी लगा कर चंगे हो जाते हैं। पर्वत मे अब तक अनेक अर्हत रहते हैं। आस पास के सारे जनपद के बौद्ध लोग साल साल कश्यप की पूजा आकर करते हैं। धर्म के श्रद्धालुओं के पास रात को अर्हत आते हैं, बातचीत करते हैं, शंका समाधान करते हैं और अंतर्धान हो जाते हैं।

इस पर्वत मे आताम्र * झाड़ बहुत हैं। उसमे अनेक सिंह, व्याघ्र और भेड़िये हैं। बिना सावधानी जाने योग्य नहीं है।

चौंतीसवाँ पर्व

—:o:—

वाराणसी

फाहियान पाटलिपुत्र की ओर फिरा। गगा के किनारे किनारे पश्चिम उतर कर १० योजन पर एक विहार पड़ता है।

ने ऐशियाटिक सोसाइटी बंगाल के जर्नल १९०६ के पृ० ८१—८२ मे एक लेख मे यह प्रमाणित कर दिया है कि गुरुप्पा ही कुक्कुटपाद है। गुरुप्पा बोधिगया से १९, २० मील पर कटारगढ़ स्टेशन के पास है। प्रोफेसर समद्दार ने इसे गया से दक्षिण-पूर्व सात मील पर लिखा है।

* अनुवादकों ने इसे Hazel लिखा है।

नाम है 'अनालय'*। बुद्धदेव इस स्थान मे रहे थे। अब श्रमण रहते हैं।

गंगा के किनारे किनारे पश्चिम १२ योजन चलकर वाराणसी जनपद के काशी नगर मे पहुँचा। नगर के पश्चिम-उत्तर १० ली पर ऋषिपत्तन मृगदाव विहार † है। इस दाव मे पहले एक प्रत्येक बुद्ध रहते थे। मृग सदा आश्रम मे पास बसते थे। जब भगवान को बोधिज्ञान प्राप्त होने को हुआ, सब देवता आकाश मे गान करने लगे "शुद्धोदन का कुमार प्रव्रज्या ले मार्गानुसारी हुआ, सप्ताह बीते बुद्ध होगा।" प्रत्येक बुद्ध यह सुन परिनिर्वाण प्राप्त हुआ। इसीसे इस स्थान का ऋषिपत्तन मृगदाव नाम पड़ा। भगवान के बोधिज्ञान प्राप्त होने के पीछे लोगों ने इस स्थान पर विहार निर्माण किया।

बुद्धदेव ने चाहा कि कौंडिन्यादि पंचवर्गी को उपदेश करू। पंचवर्गी परस्पर कहने लगे—इस गौतम श्रमण ने ६ वर्ष तक घोर तप किया। एक दाल और चावल खाया, मार्ग प्राप्त न हुआ। अब मनुष्यों के बीच रहता है, काया, वाणी और मन हृष्ट है। मार्ग से क्या काम है। आज आरहा है। सावधान रहो, बोलना भी न। जब बुद्धदेव पहुँचे तो जिस स्थान पर पंचवर्गी उठे और अभिवादन किया था, वहां से ६० पग पर जिस स्थान पर बुद्ध-

---

* यह वर्तमान बलिया नगर के पास था।

† सारनाथ। उस समय वाराणसी का काशी नगर वरुणा और गंगा के संगम के पास था। वह स्थान राजघाट के उत्तर उजाड पड़ा है।

देव ने पूर्वाभिमुख बैठ कर धर्मचक्र प्रवर्तन किया और कौंडिन्यादि पंचवर्गियो को उपदेश किया था, वहा से २० पग उत्तर जिस स्थान पर मैत्रेय के विषय मे भविष्यद्वाणी की थी, और फिर उससे दक्षिण ५० पग पर जहां 'एलापत्र' नाग ने बुद्धदेव से पूछा था कि मैं कब इस नाग-देह से मुक्त होऊँगा, इन सब स्थानों पर स्तूप बने हैं। अब तक हैं। भीतर दो संघाराम हैं। दोनो मे श्रमण रहते हैं।

पत्तन मृगदाव विहार से पश्चिमोत्तर १३ योजन पर कौशांबी * नामक जनपद है। विहार का नाम है गोचीर† वन। अब तक पूर्ववत् है। भिक्षु संघ रहते हैं, प्रायः हीनयानानुयायी हैं।

पश्चिम और आठ योजन पर बुद्धदेव के दस्यु यक्ष को उपदेश करने के स्थान, चंक्रमण करने और बैठने के स्थान पर सर्वत्र स्तूप बने हैं। संघाराम भी बने हैं। १०० से अधिक श्रमण रहते हैं।

---

* इलाहाबाद जिले मे यमुना के किनारे कोसम कहते है। कोई कोई कुसिरा को भ्रमवश कौशांबी समझते है।

† गोचीर वा गोशिर एक सेठ का नाम था। उसने एक वन वा आराम और विहार बनवा कर बुद्धदेव को दान किया था। वह भगवान को वर्षावास के लिये श्रावस्ती से आमंत्रित करने स्वयं गया था। पाली ग्रंथों में वैश्य का नाम गोशित् मिलता है। कौशांबी मे उस समय उदयन का राज्य था। इसके खडहर के चिह्न समगांव में जो इलाहाबाद के जिले में जमुना के किनारे है, मिलते है।

पैंतीसवाँ पर्व

—:o:—

दक्षिण

इससे दक्षिण २०० योजन जाकर एक जनपद पड़ता है। नाम है दक्षिण। वहां प्राचीन कश्यप बुद्ध का एक संघाराम है। एक समूचे पर्वत को काट कर बना है। पाँच तले का है, नीचे का तला हस्त्याकार बना है, ५०० प्रस्तर गुहा गृह हैं। द्वितीय प्रासाद सिंहाकार बना है, ४०० गृह हैं। तृतीय प्रासाद अश्वाकार बना है, ३०० गृह हैं। चतुर्थ प्रासाद वृषभाकार बना है, २०० गृह हैं। पंचम प्रासाद कपोताकार है, १०० गृह हैं। प्रासाद शिखर पर पानी का झरना है। पत्थर की गुहाओं मे सामने से होकर कोठरियों मे फिरती पानी की धार कहीं चक्कर काटती कहीं मुड़ती हुई नीचे के तले मे पहुँचती है, फिर सामने से घूम कर द्वार से निकल जाती है। श्रमणो की सब गुहाओं मे स्थान स्थान पर पत्थर काट कर प्रकाश के लिये गौखे बने हैं, गुहा मे स्वच्छ प्रकाश रहता है, अंधकार का नाम नहीं है। गुहाओ के चारो कोनों मे पत्थर काट कर ऊपर जाने के लिये आरोह बने हैं। अब के मनुष्यो का डील छोटा होता है, सीढ़ी सीढी चढ़ कर ऊपर जाते हैं। पहले के मनुष्य एक पग मे ऊपर पहुँचते थे। इसी कारण इस विहार का नाम पारावत पड़ा। पारावत कपोत का हिंदी नाम है। इस विहार मे अर्हत निरंतर रहते हैं।

भूमि बनजर पहाड़ी है। बस्ती नहीं है। पर्वत से बहुत दूर पर एक बस्ती दुष्ट आचार विचारवालों की है। वे न बौद्ध श्रमण, न ब्राह्मण, न अन्य धर्मों के जानने माननेवाले हैं। जनपद के अधिवासी निरंतर देखते आए हैं कि उड़नेवाले मनुष्य विहार मे आया करते हैं। एक बार कोई बौद्ध इस विहार मे पूजा के लिये गया। गाँव के लोगों ने पूछा उड़ते क्यो नहीं। हमने तो जिन बौद्धों को देखा सब उड़ते थे। बौद्ध ने चट उत्तर दिया कि अभी हमारे पंख यथावत नहीं निकले हैं।

दक्षिण जनपद नितांत निराले हैं। मार्ग भयावह और दुस्तर हैं। कठिनाइयों को झेलकर जाने के इच्छुक सदा धन और उपहार वस्तु साथ ले जाते हैं और जनपद के राजा को देते हैं। राजा प्रसन्न हो रक्षक मनुष्य साथ भेजता है जो एक बस्ती से दूसरी बस्ती तक पहुँचाते और सुगम मार्ग बताते हैं। फाहियान तो वहां न जा सका। देश के लोगों ने जो कहा उसे जैसा सुना वैसा उसने वर्णन किया।

छत्तीसवाँ पर्व

—:o:—

पाटलिपुत्र मे खोज और विद्याभ्यास

वाराणसी से पूर्व लौट कर पाटलिपुत्र पहुँचा। फाहियान का प्रधान उद्देश था उत्तरीय हिंदुस्तान के सब जनपदो में विनय-पिटक की खोज। परंपरा से मौखिक शिक्षा देता एक आचार्य्य

मिला पर मूल प्रति नहीं मिली, किस से लिखता। (इसी लिये) इतनी दूर चल कर मध्य हिंदुस्तान में आया। यहां महायान के संघाराम मे एक निकाय का विनय मिला अर्थात् महासंघिक निकाय का विनय। बुद्धदेव जब संसार में थे तब प्रथम महासंघ मे इसका प्रचार हुआ था। जेतवन विहार के शिक्षाक्रम के अनुसार मूल था। शेष १८ निकाय* अपने आचार्यों के मत और सिद्धांतानुसार प्रधान विषयों में समानता और छोटे छोटे विषयो में विभेद रखते थे, जैसे एक का अथ है तो दूसरे की इति। यह प्रति, फिर भी सर्वांगपूर्ण और विवृत्ति और भाष्ययुक्त थी।

एक और निकाय का विनय मिला जो लगभग ७०० गाथा का था। यह सर्वास्तिवाद निकाय का विनय था। चीन देश के भिक्षु संघ मे इसी का प्रचार था। इसकी भी शिक्षा गुरुपरंपरा से मौखिक ही चली आती थी, लिखित न थी। यहीं के इसी सघ मे संयुक्त-धर्म-हृदय लगभग ६००० गाथा का मिला। एक और निकाय का सूत्र २५०० गाथा का, परिनिर्वाण वैपुल्य सूत्र का एक अध्याय, ५०० गाथा का, और महासंघिक अभिधर्म मिला।

अतः फाहियान यहां ३ वर्ष रहा। संस्कृत भाषा और सस्कृत ग्रथों का अभ्यास करता और विनय पिटक लिखता

---

* भ्रमवश अगरेजी अनुवादकों ने भाव न समझ मनमाना अर्थ किया है। लेगी ने Eighteen Schoos, बील ने Eighteen Sects और अन्यों ने Eighteen Collections तथा प्रोफेसर समद्दार ने अष्टादश सम्प्रदाय लिखा है।

रहा। तावचिंग जब मध्य देश मे पहुँचा तो उसने श्रमणों को देखा। संघ का उत्कृष्ट आचार व्यवहार और बात बात मे विनय का अनुसरण मिला तो तावचिंग को चीन की प्रांत भूमि के भिक्षुसंघ के अधूरे और विच्छिन्न विनय का स्मरण आया। उसने शपथ करके कहा "अब से जब लो बुद्ध न होऊँ प्रात की भूमि मे न जन्म लू"। फिर वह यहीं रह गया और न लौटा। फाहियान का तो मुख्य अभिप्राय था समग्र विनय ले जाकर हान के देश मे प्रचार करना। निदान वह अकेला लौटा।

सैंतीसवाँ पर्व

—:०:—

चपा और ताम्रलिप्ति—सिहल यात्रा

गंगा के किनारे किनारे पूर्व दिशा मे १८ योजन उतर कर दक्षिण किनारे पर चंपा* का महा जनपद पड़ा। बुद्धदेव का विहार चंक्रमण स्थान पर है। सब बुद्धों के बैठने के स्थान पर स्तूप बने हैं। श्रमण रहते मिले। इससे और पूर्व चल कर ५० योजन के अनुमान चलने पर तांवलिप्त† जनपद मे पहुँचा।

---

* यह भागलपुर जिले का एक विभाग है।

† इसे तमलुक कहते हैं जो बंगाल के मेदिनीपुर जिले में है।

यहां बदर है । इस जनपद मे २४ संघाराम हैं । श्रमण संघ मे रहते हैं । बौद्ध धर्म का भी अच्छा प्रचार है । फाहियान यहां दो वर्ष रहा । उसने सूत्रो को लिखा, मूर्तियों का चित्र बनाया ।

फिर व्यापारियों के एक बृहत्पोत पर चढ़ा, समुद्र मे दक्षिण-पश्चिम ओर चला । जाड़े का आरंभ, वायु अनुकूल । १४ दिन चल कर सिंहल जनपद मे पहुँचा । जनपद के किनारे लोगों ने कहा कि ७०० योजन के लगभग आए ।

यह जनपद एक बड़ा द्वीप है । पूर्व-पश्चिम ५० योजन, दक्षिण-उत्तर ३० योजन । दाये बाये छोटे छोटे द्वीप हैं । १०० के लगभग—अंतर १० ली से २०० ली तक, पर सब महाद्वीप के अधीन । अनेकों मे विविध शुद्ध और चमकीले मणि मुक्ता निकलते हैं । एक मे मुक्ता मणि निकलता है । यह १० ली वर्ग भूमि का होगा । राजा पहरे और रक्षा के लिये पुरुष नियत करता है । पानेवालों से मोती के १० भाग मे से ३ ले लेते हैं ।

अड़तीसवाँ पर्व

—:o:—

सिहल

इस जनपद मे पहले मनुष्य नहीं बसते थे । राक्षस और नाग रहते थे । सब जनपद के व्यापारी वाणिज्य करते थे ।

वाणिज्य के समय राक्षस सदेह देखाई नहीं पड़ते थे। बहुमूल्य पदार्थों पर मूल्य के चिट लगा रख देते थे। व्यापारी जन मूल्य के अनुसार क्रय करते और माल ले जाते थे।

व्यापारियों की आवा जाही से लौटने पर सब जनपद के लोगो ने इस भूमि की मनोहरता की चर्चा सुनी। सब दल के दल चले, बसने लगे, महा जनपद हो गया। यह जनपद सौम्य और सुहावना है। जाडे गर्मी मे अंतर नहीं है। वनस्पति और वृक्ष संवत लहलहे रहते हैं। कृषि लोगों की इच्छा पर (जब चाहे) होती है, कोई ऋतु नियत नहीं है।

बुद्धदेव इस जनपद में आए। दुष्ट नागों को (उपदेश से) सुधारना चाहा। अपने अमित बल से उन्होने एक पग राजा के नगर के उत्तर और एक पग एक पर्वत के ऊपर रखा। दोनों पदचिह्नों मे १५ योजन का अंतर था। राजा ने नगर के उत्तर के पदचिह्न पर एक बृहत स्तूप बनवाया जो ४०० हाथ ऊँचा सोने तथा चांदी और सर्व रत्न जटित है। उसने स्तूप के पास एक संघाराम भी बनवाया था—नाम अभयगिरि है, यहां ५००० श्रमण रहते हैं। यहां बुद्धदेव का एक मडप भी है—उस पर सोने चांदी के खुदाई और पच्चीकारी के काम चढे हैं—

बुद्धदेव के सिंहल जाने का प्रमाण सिवाय इसके और नहीं है कि सिंहल के महावंसो आदि में इसका उल्लेख है।

सर्व रत्न लगे हैं। मध्य मे हरित॰ नीलमणि की एक प्रतिमा है—२० हाथ ऊँची—सर्वांग सप्तरत्न से देदीप्यमान—प्रशांत भाव युक्त—वाणी से वर्णनातीत, दहिने कर मे एक अमूल्य मुक्ता है। फाहियान को हान देश छोड़े कई वर्ष बीत गए थे। जो बात करने को मिले सब भिन्न अपरिचित स्थल के मनुष्य। पर्वत, नदी, वनस्पति, वृक्ष कभी आँख नही पड़े थे। संगी साथी सब अलग, मरे वा इतस्ततः हो गए। दूसरे की छाया नहीं, मन मे निरतर व्यग्रता। अचानक नीलमणि की मूर्त्ति की ओर देखा, एक व्यापारी सफेद रेशम का पंखा चढ़ाता था। आँसू भर आए, आँखों से टप टप गिरने लगे।

इस जनपद के एक प्राचीन राजा ने, मध्यदेश को भेज कर (चल) पत्र † की डाली मँगवाई और बुद्धदेव के मडप के पास लगवाई। वह लगकर २०० हाथ का ऊँचा वृक्ष हो गई है। यह पेड़ पूर्व-दक्षिण को झुक गया था, राजा ने गिरने के भय से आठ नौ 'वित्ता' गोलाई का एक लकड़ी का तका‡ पेड़ मे लगवा दिया। पेड़ निरंतर तक्के के स्थान से भीतर जमने लगा और लकडी को बेध कर नीचे पहुँच कर भूमि में घुसा और उसने जड़ पकड़ी,

---

॰ लाजवर्त।

† महावंश में लिखा है कि अशोक ने बोधिद्रुम की डाली भेजवाई थी।

‡ उठँगना।

ऊपर ४ वित्ता (मोटा) गोला हो गया, तक्का के भीतर फार है पर बाहर से जुड़ा है, लोगो ने अलग नहीं किया है । वृक्ष के नीचे एक विहार बना है, भीतर मूर्ति स्थापित है । यती गृही श्रद्धा से अविश्रांत दर्शन करते रहते हैं । नगर मे बुद्धदेव के दाँत का एक विहार है । सब सप्तरत्नमय निर्मित है ।

राजा ब्राह्मणो के आचार का पालन करता है । नगर के भीतर के लोगों मे धर्म पर श्रद्धा और विश्वास का भाव भी अधिक है । जनपद के शासन के प्रतिष्ठित होने से, ईति, दुर्भिक्ष, विप्लव, वा अव्यवस्था नहीं हुई है । भिक्षु संघ के कोश मे अनेक बहु-मूल्य रत्न और अमूल्य मणि हैं । एक राजा भिक्षुओ के कोश मे पैठा और उसने सब देखा । मणि-मुक्ता को देख उसके मन मे लोभ उत्पन्न हुआ, उसने बलपूर्वक अपहरण करना चाहा, तीन दिन में उसे चेत हुआ, भिक्षुसंघ मे जाकर उसने सिर नीचा किया, अपने मानसिक पाप पर पश्चात्ताप किया, सब स्पष्ट कह भिक्षुओ से आग्रह कर यह विधान स्थापित कराया कि अब से फिर आगे राजा को कोश मे जाने और देखने का निषेध हो, भिक्षु भी चालीस वर्ष वेष मे न रहा हो तो घुसने न पावे ।

इस नगर में अनेक वैश्य श्रेष्ठ और सावा † व्यापारी बसे हैं । इन व्यापारियों के घर सुंदर और भव्य हैं । गली अंतरे साफ़ सुथरे रहते हैं । सडकों के चतुष्पथों पर धर्मोपदेश के लिये

* अर्थात दरार सा फट गया है ।

† अरब देश के व्यापारी ।

स्थान बने हैं। महीने मे अष्टमी, चतुर्दशी और पंचदशी* के दिन आसन बिछता है, ऊँची गद्दी लगती है, गृही यती चारो ओर के इकट्ठे होते हैं और धर्म-चर्चा सुनते हैं। इस जनपद के लोग कहते हैं कि यहां सब ६०००० भिक्षु रहते हैं जिन्हे संघ के भांडार से भोजन मिलता है। राजा का भी नगर में सत्र है जिसमे पांच छ हजार लोगो को और धर्मार्थ मिलता है। संघ के भांडार मे कमी होती है तो बड़ा भिक्षापात्र † उठाकर जाते हैं, जितना आता है लेते हैं, भर जाने पर लौटते हैं।

बुद्धदेव का दाँत सदा तीसरे महीने के मध्य मे निकलता है, निकलने से १० दिन पहले राजा एक भव्य अमारी बड़े हाथी पर रखाता, एक अच्छे वक्ता को चुनकर राज्य के वस्त्र आभूषण पहना उसे हाथी पर चढ़ाता है और डका देकर यह घोषणा कराता है— बोधिसत्व ने तीन असंख्येय कल्पो मे पुण्योपार्जन किया, अपनी आत्मा (देह) को न बचाया, जनपद नगर स्त्री पुत्र (दिया), आंख निकाल दूसरे को (दी), कपोत के बदले मांस काट कर (दिया), अपना शिर काट कर दान किया, शरीर भूखी बाघिन को खाने को दिया, मस्तिष्क और भेजा (देने) मे क्षोभ न किया। इस प्रकार वे भाति भाति के क्लेश प्राणियों के लिये सहते रहे। पर जब बुद्ध हुए तो उन्होने लोक मे ४५ वर्ष तक धर्म

---

* पूर्णिमा और अमावास्या।

† जैसे भारतवर्ष में साधु लोग भंडारे के लिये मटका लेकर भराने के लिये गाँव गाँव फिरा करते है।

का उपदेश किया, शिक्षा दी, लोगो को सुधारा, अशांतो को शांति दी और डूबतों को पार लगाया, सब प्राणियों का हित संपादन कर परिनिर्वाण प्राप्त किया, परिनिर्वाण को १४९७ वर्ष हुए। जगज्ज्योति निर्वाण प्राप्त हुई, सब प्राणी शोकग्रस्त हुए। देखो अब से १० दिन बाद बुद्धदेव का दाँत निकलेगा, अभयगिरि विहार मे जायगा, जनपद के सब यती गृही, धर्मसचय के अभिलाषी मार्ग साफ सुथरा रखो, गली अंतरे सजाओ, ढेर सा पुष्प और धूप पूजा के लिये सग्रह करो।

यह घोषणा हो जाने पर राजा के नियोग से सडक के दोनों ओर बोधिसत्व के ५०० अवतारों के रूप बनते हैं, जो समय समय पर उन्होने धारण किए थे, कहीं सुदान बनते हैं, कहीं साम बनते हैं, कही गजराज बनते हैं, कही मृग अश्व बनते हैं। सब छायाचित्रों के रंग चमकीले, बनावट भव्य होती है, देखने में वे जीवित समान जान पड़ते हैं। फिर बुद्धदेव का दाँत निकलता है, सडक के बीच से होकर जाता है, सब ओर से पूजा चढ़ती है, अभयगिरि विहार मे पहुँचता है। बुद्धदेव के मंडप मे यती गृही एकत्र रहते हैं। वे धूप जलाते, दीप प्रज्वलित करते और नाना विधि उपचार करते हैं जो दिन रात बंद नहीं होता। ९० दिन पूरे होने पर नगर के भीतर के विहार

बुद्धदेव ने छ बार हस्ती का, दस बार मृग का, और चार बार घोड़े का जन्म धारण किया था।

मे उपवसथ दिन आने पर पट खुलता है और यथाविधि प्रणिपात होता है ।

अभयगिरि विहार से ४० ली पर एक पर्वत है। पर्वत में एक विहार है, नाम 'चैत्य' है। उसमे २००० भिक्षु होंगे। भिक्षुओं मे एक बड़ा धार्मिक श्रमण है, नाम धर्मगुप्त। इस जनपद के लोग उसे बड़े आदर से देखते हैं। एक पत्थर की गुहा मे यह चालीस वर्ष से रहता है। वह इतनी दया दिखाता है कि साँप और चूहे एक साथ उस एक ही गुहा में रहते और परस्पर कुछ हानि नहीं पहुँचाते हैं।

उनतालीसवाँ पर्व

एक अर्हत का भस्मात-संस्कार

नगर के दक्षिण ७ ली पर एक विहार है—नाम महाविहार।

---

* अब बुद्धदेव का दंतधातु 'मलिगाव' नामक मदिर में है। वहां एक विहार के भीतर यह मंदिर है। विहार एक ह्रद के किनारे है, मंदिर के द्वार पर यह श्लोक लिखा है—

सर्वज्ञवक्त्रसरसीरुहराजहंसं
कुन्देन्दु सुन्दररुचिं सुरवृन्दवंद्यम्।
सद्धर्मचक्रसहजं जनपारिजातं
श्रीदंतधातुममलं प्रणमामि भक्त्या।

धातु मदिर मे एक घटाकार स्वर्ण संपुट में सिंहासन पर रखा है। संपुट के भी छ और सपुट हैं और बीच के संपुट में धातु है।

उसमे ३०० भिक्षु रहते हैं, वहां एक बड़ा धर्मनिष्ठ श्रमण रहता था, जो पवित्र और विशुद्धाचारी था। जनपद के लोग उसे अर्हत समझते थे। जब उसका अंत काल समीप आया तो राजा जाँचने आया। उसने यथाधर्म सब भिक्षुओं से पूछा कि क्या भिक्षु पूर्णतया मार्ग जान चुका है? उन्होंने नियोग मानकर उत्तर दिया—हां, अर्हत पद प्राप्त है। अंतावसान पर राजा ने सूत्र-विनयानुमोदित अर्हत के लिये, विधि अनुसार (समाधि करवाकर) विहार से पूर्व चार पाँच ली पर सुंदर और वृहत् चिता बनवाई। ३० हाथ की लंबी चौड़ी और उतनी ही ऊँची। ऊपर से चदन मुसव्वर और सब सुगंध काष्ठ चुनवाए, चारों ओर चढ़ने के लिये आरोह बनवाया। फिर सुंदर श्वेत रेशम की भांति ऊर्ण वस्त्र मे ऊपर से बार बार लपेटा, फिर एक बड़ा रथ बना, जैसे हमारी शव ले जाने की गाड़ी*। पर नाग और मछली नहीं थी।

दाह के समय राजा और जनपद की प्रजा सब चारों ओर से झुंड की झुंड आकर एकत्र हुई और फूल और धूप चढ़ाती, रथी के साथ साथ समाधि-स्थान† की ओर चली। वहां राजा ने फूल और गंध से पूजा की। पूजा हो चुकी तो अरथी उठाकर चिता पर रखी गई, तुलसी का तेल ऊपर से चारों ओर डाला

* चीन देश में शव को गाडी पर लाद कर समाधिस्थान में ले जाते हैं—उस गाडी पर नाग और मछली आदि के चित्र बने रहते हैं।

† चीन देश में शव को समाधि देते है। इसी लिये चैत्यस्थान की जगह मूल में समाधिस्थान, समाधि आदि चिह्न है।

गया और आग दी गई। आग जलने लगी, फिर प्रत्येक मनुष्य ने आंतरिक भक्ति से ऊपर के कपडे उतार डाले और सब पर के पंखे और छाते ज्वाला पर दूर से हिला हिला दग्ध होने तक अग्नि को प्रज्वलित करते रहे। दाह हो चुका। अस्थिचयन हुआ और अस्थिसंचय कर स्तूप बनाने लगे। फाहियान जीवनकाल मे पहुँच न सका, वह केवल समाधि मात्र देख पाया।

राजा बौद्धधर्म का दृढ विश्वासी था। उसने संघ के लिये विहार बनवाना चाहा। पहले उसने महापरिषद को आमंत्रित किया, भात खिलाया और उनकी पूजा करके सुंदर बैलो की एक जोड़ी ली, उनके सींघ सोन चांदी से मढे जो बहुमूल्य रत्नों से जड़े हुए थे, फिर सुंदर सोने का हल बनवाया। राजा ने वास्तु भूमि पर चारों ओर से जोता—फिर संघ को वहां की बस्ती खेत घर ताम्रपत्र लिखकर दान दिया कि आगे कोई उसे विफल और परिवर्तन न कर सके।

फाहियान ने इस जनपद मे एक 'हिंदी मार्गी' को ऊँचे आसन पर बैठ कर सूत्र की व्याख्या करते सुना कि "बुद्धदेव का भिक्षापात्र पहले वैशाली मे था, अब गांधार मे है, इतनी शताब्दी पीछे पश्चिम तुषार जनपद मे जायगा*, इतने सौ वर्ष पीछे खुतन जायगा, इतने सौ वर्ष पर खरश्चर † जायगा, इतने सौ

---

* फाहियान ने व्याख्या में ठीक संख्या सुनी थी पर अब भूल गया—चीनी टिप्पणीकार वा लेखक।

† थियनशान पर्वतमाला के मूल में बोर्स्टेंग हृद के उत्तर है।

वर्ष पर हान की भूमि मे जाकर पहुँचेगा, इतने सौ वर्ष पर सिंहल जनपद मे जायगा, इतने सौ वर्ष पर मध्य हिंदुस्तान मे लौटेगा। फिर वह तुषित स्वर्ग पर आरोहण करेगा। बोधिसत्व मैत्रेय दर्शन कर कहेंगे—"आहा, शाक्यमुनि बुद्ध का भिक्षापात्र आ गया"। ७ दिन तक सब देवताओं के साथ फूल और गंध से पूजा करेंगे, सात दिन पर वह जबूद्वीप को लौटेगा, सिंधु-नागराज उसे लेकर नागलोक मे प्रवेश करेगा। मैत्रेय के बोधि-प्राप्त-काल मे यह फिर चार* भाग (अलग) हो कर "अन्न" पर्वत पर जहा से आया था लौटेगा। मैत्रेय जब बोधि प्राप्त होंगे तो चारों देवराज फिर मन मे बुद्ध की चिंता करेंगे। यही पहले के बुद्धों का नियम है। भद्रकल्प के सहस्र बुद्धों का यही एक भिक्षापात्र है। भिक्षापात्र जाते ही बुद्धधर्म भी क्रमशः लोप हो जायगा। बुद्धधर्म के लोप होने पर मनुष्यों की आयु क्षीण हो जायगी, अंत मे ५ वर्ष की होगी। ५ वर्ष की होने पर चावल, घी, तेल सब लय हो जायँगे, अधिवासी परम दस्यु होंगे, वनस्पति वृक्ष जिसे छुएँगे तलवार लाठी हो जायँगे, परस्पर मार-काट मचावेंगे, उनमे धर्मवाले सहवास छोड पर्वत में जायँगे, दस्यु जब परस्पर नाशमान हो जायँगे तब लौटेंगे, आकर परस्पर कहेंगे, पूर्व के लोग परमायु होते थे, दस्युकर्म करने और परम अधर्मी बन जाने से हमारी आयु क्षीण हो गई है, घटते घटते ५

---

* बुद्धदेव का भिक्षापात्र चार भिक्षापात्रों को परस्पर दबाकर बनता है।

वर्ष की रह गई है। हम सब मिलकर सत्कर्म करें, करुणा और दया का भाव हृदय मे उत्पन्न करे, यत्न से सत्कर्म का अनुष्ठान करे, जब वे इस प्रकार सत्कर्म का आचरण करने लगेंगे आयु द्विगुण बढ़ती जायगी और अंतत: ८०००० वर्ष की हो जायगी। मैत्रेय जब लोक मे आवेगे और धर्मचक्र प्रवर्तन करने लगेगे, तो सब से प्रथम वे शाक्य के शेष धर्मानुयायियों मे से उन्हे अपना शिष्य करेगे जो प्रव्रज्या लेकर त्रिरत्न,* पंचोपादान और † अष्टांग धर्म ग्रहण कर त्रिरत्न की पूजा करेगे, फिर द्वितीय और तृतीय वार मे पूर्व के सुकर्मियों को दीक्षा देगे।

फाहियान ने इसे सूत्र समझकर लिखना चाहा पर उस पुरुष ने कहा कि सूत्र नहीं है मैं अपने मन से व्याख्यान करता हूं।

चालीसवाँ पर्व

यात्रा का अंत

फाहियान इस जनपद मे दो वर्ष रहा और उसे 'महीशासक' विनयपिटक के दीर्घागम, संयुक्तागम और संयुक्त सचय पिटक ‡ की प्रति मिली। सब हान देश मे अज्ञात थे। इन संस्कृत प्रतियों

* जाति, जरा, व्याधि, मरण और रागद्वेष।

† सम्यक्कर्मांत, सम्यग्दृष्टि, सम्यक्संकल्प, सम्यग्वाचा, सम्यगाजीव, सम्यग्व्यायाम, सम्यक्स्मृति और सम्यक्समाधि।

‡ यह क्षुद्रक पाठ जान पडता है। लेगी लिखते है कि इस नाम का कोई ग्रंथ नहीं है।

को पा वह एक व्यापारी के बड़े पोत पर चढ़ा। उसमे २०० से अधिक मनुष्य के पीछे एक छोटी नौका समुद्रयात्रा से क्षति के रक्षार्थ बड़े पोत से बँधी हुई थी। सानुकूल वायु थी। पूर्व जाकर ३ दिन पर तूफ़ान का सामना पड़ा, पोत मे छेद हो गया, पानी भरने लगा, व्यापारी छोटी नाव मे जाना चाहते थे, छोटी नाव के लोगों ने, बहुत से लोगों के चढ़ने के भय से रस्सी काट दी, व्यापारी बड़े घबडाए, जान का जोखो जान पड़ा, वे घबडाए कि पोत मे पानी न भर जाय, भारी भारी बोझ असवाब पानी मे फेंकने लगे। फाहियान ने भी जलपात्र,* कुंडका और और चीजों को समुद्र मे फेंक दिया, वह डरा कि व्यापारी कहीं सूत्रों और चित्रों को न फेंक दे। उसने हृदय मे अवलोकितेश्वर का ध्यान किया, हान देश के भिक्षुसंघ को प्राण अर्पण किए, उसने कहा मैंने धर्म को ढूंढने के लिये दूर यात्रा की है, मुझे अपना तेज और प्रताप देकर लौटा कर अपने स्थान पर पहुँचाओ।

इस प्रकार तूफ़ान रात दिन १३ दिन तक रहा। एक द्वीप के किनारे लगे, भेड़ा थमने के पीछे पानी भरने के छेद का स्थान देखा गया, वह भरा गया, फिर आगे बढे, समुद्र के मध्य अनेक डाकू रहते हैं, वे मिल जायँ तो बच कर नहीं जा सकते, यह समुद्र विस्तृत है, ओर छोर नहीं, पूर्व पश्चिम का ज्ञान नहीं, केवल सूर्य्य चंद्रमा और तारो के देखने से ठीक मार्ग पर चलते

---

* भिक्षुओं के लिये दो जलपात्रों का विधान है, कुंडी और कलसी वा लोटा और ग्लास वा गगरा लोटा।

हैं, आंधी पानी मे वायु ही के ले जाने से जाते हैं। निश्चित मार्ग नही, रात की अँधियारी मे केवल ऊँची लहरें, परस्पर थपेड़े खाती देखाई पड़ती हैं, अग्निवर्ण ज्वाला निकलती है, साथ ही साथ पानी पर बड़े वडे कछुए और अन्य अधोवासी जतु निकलते वा देख पड़ते हैं। व्यापारी लोग भयभीत, जानते नहीं कि किधर जा रहे हैं, समुद्र गंभीर, थाह नहीं। लंगर डालने और ठहरने का ठौर नही। आकाश खुल गया तो पूर्व पश्चिम सूझने लगा, फिर लौटे, ठीक राह पर चले, कहीं गुप्त चट्टान पड़ी तो बचने का उपाय नहीं।

इस प्रकार ९० दिन से अधिक वीते, एक जनपद मे पहुँचे, नाम जावा। इस जनपद मे ब्राह्मण धर्म के विभिन्न संप्रदायों का प्रचार था, बौद्ध धर्म की कुछ चर्चा नही थी। इस जनपद मे ५ महीने ठहरे, फिर व्यापारियों के एक बृहत् पोत पर चढे—२०० और यात्री भी थे, ५० दिन की सामग्री ले चौथे मास के १६ वे दिन चले।

फाहियान ने इस पोत पर ही वर्षा विताई। पूर्वोत्तर 'कांग चाव'* जा रहे थे। महीना दिन बीतने पर रात के दो पहर बीतते बीतते काली आँधी आई, पानी बरसने लगा, व्यापारी यात्री व्याकुल हो उठे, फाहियान ने भी अवलोकितेश्वर और हान देश के श्रमण संघ का ध्यान करना प्रारभ किया और उनके प्रबल प्रताप के आश्रय सवेरा किया। सवेरा होते ही ब्राह्मण विचार

---

* चीन का एक बंदर।

कर कहने लगे कि इस श्रमण के साथ से ही हम लोगों पर यह आपत्ति आई और यह महा संकट पड़ा है, इस भिक्षु को उतारो, समुद्र के किसी द्वीप के किनारे छोड़ दो, एक मनुष्य के लिये हम सब क्यों विपत्ति भोगें। फाहियान के साथी एक सहृदय जन ने कहा—इस भिक्षु को उतारते हो तो मुझे भी उतार दो, नहीं तो मुझे मार डालो, अन्यथा इस भिक्षु ही को उतारा तो हान देश में पहुँचूगा तो राजा के पास सब करनी कहूंगा। हान देश का राजा भी दृढ़ बौद्धधर्मानुयायी है, भिक्षुसंघ का मान करता है। यह सुन सब व्यापारी घबरा गए, उतारने का किसी का साहस न पड़ा।

उस समय आकाश मे नितांत अंधकार छाया था, समुद्र के शिक्षक (नाखुदा) परस्पर ताकते, वे भ्रमग्रस्त थे, ७० दिन से अधिक मार्ग मे कष्ट सहते बीत चुके थे, दाना पानी चुक गया, समुद्र के खारे पानी में भोजन पकाने लगे, अच्छा पानी बाँट लिया, दो (दां) पाइंट प्रति मनुष्य मिला, झट वह भी चुक गया, व्यापारी लोग सोच विचार कर बोले—चाल की गति के विचार से ५० दिन में 'कागचाव' पहुँचना चाहिए, बहुत दिन बीत गए, राह तो नहीं भूले। पश्चिमोत्तर किनारे की जोह मे चले, रात दिन चलकर १२ दिन मे 'चांगकांग' *प्रदेश की सीमा

---

* नाव लाव पर्वत के किनारे "शानतुंग" में लगी थी। यह स्थान "कियावचाव" के उत्तर है। अब वह लियावचाव प्रदेश के 'फिंगतूचाव" में सम्मिलित है।

पर लाव पर्वत के दक्षिण किनारे पहुँचे, यहां पहुँच कर अच्छा पानी और शाक मिले। अनेक विपत्ति झेली, बहुत दिन चिंता-ग्रस्त रहे, अचानक इस किनारे पहुँचे, लेइ और को: शाकों को देखा, इससे जान गए कि यह हान देश ही है—फिर न रहने वाले मनुष्य देख पडे और न कुछ (जाने आने का) चिह्न, जान नहीं पड़ता था कि कहां हैं, कोई कहता अभी 'कांगचाव' नहीं आए, कोई कहता छोड़ आए, कुछ निश्चित जान नहीं पड़ता था। निदान एक छोटी नाव मे बैठ एक खाड़ी मे घुसे कि कोई आदमी देख पड़े तो इस स्थान की पूछताछ करे, दो व्याधे मिले, साथ लेकर आए, फाहियान को पूछने के लिये बुलाया, फाहियान ने पहले ढाढ़स दिया, फिर पूछा तुम कौन लोग हो। उन्होने उत्तर दिया कि हम बुद्धदेव के शिष्य हैं। फिर पूछा पर्वत मे क्या खोजने आए थे। वे बात बनाने लगे कि कल सातवे मास की १५ वीं तिथि है बुद्धदेव को चढाने के लिये सफ़तालू की आवश्यकता थी। फिर पूछा यह कौन जनपद है। उन्होंने उत्तर दिया सिंगचाव के अंतर्गत चांगकांग प्रदेश की सीमा है, जो सीन वंश के अधिकार मे है। यह सुनतेही व्यापारी लोग प्रसन्न हो गए। उन्होने झट रुपया और माल (अपने नौकरो से) मँगा चागकाग के प्रदेशाधिप के पास भेजा।

शासक ले-ए दृढ़ बौद्धधर्मी था। उसने जब सुना कि एक श्रमण सूत्रो और चित्रो को ले कर नाव पर समुद्र पार आया है, तो रक्षक जनो को साथ ले वह बंदर पर आया। वह फाहियान से

मिला और सूत्रों और चित्रों को ले (अपने) शासन स्थान पर आया। व्यापारी लोग वहा से यांगचाव की ओर लौट गए। सिगचाव पहुँच कर फाहियान एक जाड़ा और एक गर्मी भर रोक रखा गया। वर्षा विता कर फाहियान ने सव आचार्यों के वियोग से आतुर हो चांगगान जाना चाहा, पर यह विचार कर कि काम आवश्यक है वह दक्षिण के प्रांत' की ओर उतरा और उसने आचार्यों से मिल सूत्रों और विनय पिटक को दिखाया।

फाहियान चांगगान से चला, ६ वर्षों में मध्य देश मे पहुँचा, ६ वर्ष वहां फिरा, लौट कर ३ वर्ष मे सिंगचाव पहुँचा, ३० से कुछ ही कम जनपदों में भ्रमण किया था, मरुभूमि से पश्चिम हिंदुस्तान तक, भिक्षुसंघ का सदाचार, और धर्म के प्रभाव से प्रकृति का विपर्य्यय, वर्णन मे नहीं आसकता था। उसने यह विचारा कि आचार्य्य गणों ने (उनका) पूरा विवरण नहीं सुना होगा। वह अपने तुच्छ जीवन की परवाह न कर समुद्र से लौटा, दोहरा दुःख और कष्ट सहन किया। सौभाग्यवश तीनों उपास्यों के प्रताप से वाधाओं से वच कर आ गया। अतः यात्रा का विवरण लिख दिया कि पढनेवाले जानें कि उसने क्या क्या सुना और देखा।

"नानकिन" नगर में जो दक्षिण प्रात का शासन स्थान था।

उपसंहार

सिन वंश के ये-हे के काल के १२ वे वर्ष मे वर्षाधिप कन्या से तुला मे संक्रामित हुए। ग्रीष्मकाल मे वर्षावास बीतने पर फाहियान से भेट हुई। आए तो हिमकक्ष मे ठहराया। जब जब बात हुई यात्रा विषयक प्रश्न करता रहा। वह नम्र और सुशील था, झट सत्य सत्य कहता था। पहले संक्षेप से कहा फिर जब विवृति पूछी तो सांगोपांग कह गया। कहने लगे जब मैं कष्टो की ओर देखता हूं तो मेरा हृदय नहीं थमता, पसीना (रोमांच) आ जाता है। विपत्तियों का सामना किया, भयावह स्थानो मे गमन किया—कुछ उद्देश्य मेरा था—सिवाय सरलता और दृढ़ता से उसे पूरा करने के और दूसरा ध्यान नहीं था, मौत के स्थान मे निडर गया कि जिसमे मनोरथ दस हजार (अंशों) मे एक अंश भी सिद्ध हो। उन बातों का मुझ पर प्रभाव हुआ। मैंने तो जान लिया कि ऐसे मनुष्य पूर्व से आज तक कम हुए। जब से इस बड़े धर्म का पूर्व के देश मे प्रचार हुआ (वहां) कोई भी निरपेक्ष और धर्म का जिज्ञासु आचार्य्य - सा नही हुआ। अतः मैं तो जान गया कि सत्य के प्रभाव को कोई रोक नही सकता,

---

"हियान" शब्द देख कर लेगों ने "फाहियान" लिखा है पर हियान आचार्य्य को कहते है।

चाहे जितना बड़ा हो, वह पार कर ही जाता है। मानसिक बल, जो काम चाहे, पूरा करने मे चूकता नही। ऐसे कार्य्यों का संपादन, आवश्यक को भूलने और भूले हुए को स्मरण करने से होता है।

इति।

परिशिष्ट

अगुलिमाल—यह श्रावस्ती के महाराज प्रसेनजित् के पुरोहित का पुत्र था। यह प्रचड तांत्रिक और क्रूर था। यह किसी तान्त्रिक प्रयोग के लिये तर्जनी अंगुली को काट कर माला बना कर पहने रहता था। इसी कारण लोग इसे अंगुलिमाल कहते थे। श्रावस्ती मे बुद्धदेव भिक्षा के लिये जाते थे। अंगुलिमाल ने उन्हे पुकारा और कहा, 'भिक्षु ठहरे रहो'। बुद्धदेव ने कहा 'मैं ठहरा हूं' और यह कहते हुए आगे बढ़ते गए। अंगुलिमाल ने कहा, भिक्षु आप तो चले जा रहे हैं और मिथ्या कहते हैं कि 'मैं ठहरा हूं'। बुद्धदेव ने कहा—ब्राह्मण मैं सत्य कहता हूं, संसार मे मैं ही एक स्थिर हूं और सब चल हैं। यह अध्यात्मपूर्ण वाक्य सुन अंगुलिमाल को ज्ञान हो गया। वह उस ज्ञान से अर्हत पद प्राप्त हुआ।

अबपाली—यह एक वेश्या थी। इसे आम्रपाली और आम्रदारिका भी कहते थे। इसका जन्म आम के वृक्ष के नीचे हुआ था और दरिद्रतावश यह आम खा कर पली थी, इसीलिये इसका नाम अंबपाली पड़ा था। यह परम रूपवती और कामकला-प्रवीण थी। जन्मातर में यह लाख बार वेश्या हो चुकी थी। जब कश्यप बुद्ध ने अवतार धारण किया था तो उसने आत्मसंयम किया था और उसके फल से देवलोक मे देवकन्या हुई थी। देवलोक से च्युत हो यह वैशाली मे जनमी। इस जन्म

मे भी पूर्व संस्कार के अनुसार वेश्या हुई। महाराज विंविसार से इसको अधिक प्रेम था। वह बहुत दिनों तक राजगृह मे रही थी और महाराज बिंबिसार के सयोग से इसे एक पुत्र भी हुआ था, जिसका नाम जीवक था। अंबपाली कभी वैशाली मे और कभी राजगृह मे रहती थी। दोनों राजधानियों में उसके घर आराम बाग बगीचे बने थे। जब महात्मा बुद्धदेव वैशाली गए तो उसने उन्हे संघ समेत अपने घर आमन्त्रित कर भिक्षा कराई और अपने उद्यान को यथाविधि भिक्षु संघ के वास के निमित्त दान दिया। बुद्धदेव के उपदेश से अंबपाली ज्ञान लाभ कर अर्हत पद प्राप्त हुई थी।

अजातशत्रु—राजगृह के महाराज विंविसार का पुत्र। वह बचपन ही से अपने पिता बिंविसार का परम विरोधी था। युवराज पद पर अभिषिक्त हो देवदत्त के कुचक्र मे पड़ यह उस का परम भक्त और बुद्धदेव का विरोधी हो गया था। बुद्धदेव पर एक बार जब वे राजगृह मे भिक्षा करने जाते थे अजातशत्रु ने देवदत्त के कहने से नालागिरि नामक एक मत्त हाथी को छुडवा दिया था। पर हाथी उनके सामने पहुँच कर घुटने टेक कर बैठ गया। उसने बुद्धदेव के मारने के लिये धनुर्धरों को भी भेजा था पर वे भी स्तब्धहस्त रह गए थे और उन्हे मार न सके थे। अजातशत्रु अपने पिता को बंदीगृह मे डाल स्वयं उनके राजसिंहासन पर बैठा था। महाराज बिंबिसार ने कारागृह मे बड़े कष्ट से अपने प्राण दिए। कहते हैं कि जिस दिन

अजातशत्रु के घर पुत्रजन्म हुआ उसने आनंदोत्सव मे कारागृह से अनेक कैदियों के साथ अपने पिता को भी मुक्त करने की आज्ञा दी, पर उसे उसी समय महाराज बिंबिसार के देहत्याग की सूचना मिली। अजातशत्रु को पिता का मरण सुन बडा खेद हुआ। वह अपने पूर्वकृत कर्मों पर पश्चात्ताप कर विलाप करने लगा। अपने पिता की और्ध्वदैहिक क्रिया कर वह अत्यत मानसिक दु:ख से संतप्त रहता था कि भगवान बुद्धदेव राजगृह मे पधारे। अजातशत्रु जीवक के परामर्श से भगवान बुद्धदेव के पास गया और उनके उपदेश से उसकी आत्मा को शांति प्राप्त हुई। राजा अजातशत्रु को वैशाली के लिछिवी राजवंश से बड़ी शत्रुता थी। वह उन पर आक्रमण करना चाहता था। इसी कारण उसने गंगा और सोन संगम पर पाटलिग्राम मे अपनी छावनी बनाई थी। वही छावनी बसते बसते पुष्पपुर वा पाटलि-पुत्र हो गई। जिस समय पाटलिग्राम के पास उसकी छावनी थी और भगवान बुद्धदेव वहां गए थे तो पाटलिपुत्र के विषय मे उन्होंने भविष्यवाणी की थी। राजा अजातशत्रु ने एक बार भगवान बुद्धदेव के पास यह पूछने के लिये अपने मंत्री को भेजा था कि लिछिवी राजवंश का उच्छेद कब होगा। उस समय भगवान ने यह कहा था कि जब तक उनमें गण (Republic) शासन की प्रथा है उनका नाश न होगा। बुद्धदेव के परिनिर्वाण के बाद जब आनंद परिनिर्वाण के लिये वैशाली जा रहा था तो अजातशत्रु उनको लाने के लिये गंगा के किनारे तक गया। इधर

से वैशाली के लोग उन्हे लेने चले। आनंद ने देखा कि दोनों राजा, एक आगे से और एक पीछे से, आ रहे हैं। वे मध्य गंगा मे ठहर गए और वहीं योगाग्नि से परिनिर्वाण प्राप्त हो उन्होने अपने शरीर को भस्म कर दिया। उनके भस्म शरीर को दो भाग कर दोनों राजा अपने अपने देश को लौट गए और स्तूप बनवा कर उन्होने उसे रख दिया। अजातशत्रु का देहांत ईसा से ४७५ वर्ष पूर्व हुआ था।

अनागामी—आर्य्य के चार मुख्य भेदो मे से एक। ये पृथ्वी से स्वर्ग जा कर नहीं लौटते और ब्रह्म लोक ही मे निर्वाण प्राप्त होते हैं।

अनिरुद्ध—गौतमबुद्ध का चचेरा भाई। वह अमृतोदन का पुत्र था। जब बुद्धदेव कपिलवस्तु जाकर वहां से चलने लगे तो आनंद भद्रिय, किमिल, भगु, और देवदत्त के साथ नापित उपालि को ले वह प्रव्रज्या ग्रहण करने की इच्छा से उनके पास आया था। महात्मा बुद्धदेव ने सब से पहले उपालि को अपना शिष्य किया, फिर अन्य राजकुमारों को दीक्षा दी। अनिरुद्ध दिव्यचक्षु हो गया था। भगवान बुद्धदेव के त्रयस्त्रिंश धाम जाने पर इसीने उन्हे अपने दिव्य चक्षु से वहां देख आनंद को उनके पास भेजा था। वह अपने दिव्य चक्षु से सारे संसार को हस्तामलकवत देखता था।

अर्हत्—वह आर्य जो ज्ञान प्राप्त हो अष्टांग मार्ग के अवलं-

चन से निर्वाण प्राप्त हो जाता है । ऐसे लोग निर्वाण प्राप्त हो जाते हैं, पर बुद्ध नहीं होते ।

अशोक—मौर्य्यवंशी सम्राट्, चंद्रगुप्त का पौत्र । यह महाराज विदुसार का पुत्र था। चंद्रगुप्त के शासित बृहत् साम्राज्य का अधीश्वर हो उसने कलिंग पर चढ़ाई की । वहां युद्ध मे मारकाट और हताहत देख उसका मन भर आया । वह बड़ा दयालु और वौद्ध धर्म का अनुयायी हो गया । राजसिंहासन पर बैठने के पूर्व वह उज्जैन तक्षशिला आदि का शासक रह चुका था । उसने भिन्न भिन्न देशों मे बौद्ध धर्म के प्रचार के लिये उपदेशक भेजे थे और वौद्ध धर्म का प्रचार खुतन, वाल्हीक, वाख्तर से लेकर ब्रह्मा और लंका तक मे कराया । बुद्धदेव के अस्थि और धातु को स्तूपों से निकलवा कर उसने भारतवर्ष के भिन्न भिन्न स्थानों मे स्तूप वनवा कर वहां उन्हे स्थापित किया । उसके वनवाए स्तूप और स्तभ भारतवर्ष के अनेक स्थानों मे पाए जाते हैं । इसके शिलालेख और आदेश अव तक शहबाजगढ़ी कालसी आदि मे मिलते हैं ।

असंख्येय कल्प—कल्प का एक विभाग । एक कल्प मे चार असंख्येय कल्प होते हैं । चीन देश के बौद्ध इसे सत्रह शून्य के अंक का और तिब्बत और लंका के बौद्ध इसे ९७ शून्य के अंक का मानते हैं ।

असित—एक ऋषि का नाम । चीनी यात्री ने इसे 'आए'

लिखा है। यह बड़ा ज्योतिर्विद् था। यह हिमालय पर्वत के पास रहता था गौतम बुद्ध का जन्म सुन यह उन्हें देखने के लिये शुद्धोदन के राजगृह पर आया था। बालक के शरीर पर महापुरुषों के ३२ लक्षण और ८० व्यंजना देख कर उसने कहा था कि यह बालक या तो चक्रवर्ती सम्राट् वा धर्मचक्र का प्रवर्तक बुद्ध होगा। इसके नाम का उल्लेख प्राचीन ज्योतिष के ग्रंथों मे मिलता है।

आगम—महायान मे चार आगम हैं—दीर्घागम, मध्यागम, संयुक्तागम और एकोतरागम।

आनंद—बुद्धदेव का चचेरा भाई। यह बुद्धदेव के पास अनिरुद्ध और उपालि के साथ आया था और शिष्य हुआ था। यह बड़ा स्मृतिमान् और बुद्धदेव का परम प्रिय शिष्य था। उनके परिनिर्वाण प्राप्त होने पर यही त्रिपिटक का संग्रहकार हुआ। इसका परिनिर्वाण गंगा के मध्य वैशाली की सीमा पर पाटलिपुत्र से एक योजन उत्तर हुआ था। इसने अपना शरीर योगाग्नि से भस्म कर डाला और इसके शरीर के भस्म को अजातशत्रु और लिछिवी लोगों ने लेकर आधे आध बाँट कर अपने अपने देशों मे स्तूप बनवा कर उसमे रखा। आनंद भविष्य मे बुद्ध होगा। आनंद ने ही स्त्रियों को प्रव्रज्या देने के लिये बुद्धदेव से प्रार्थना की थी।

आम्रपाली—दे० 'अंबपाली'।

आर्य्य—दु ख, समुदय, निरोध और मार्ग का अभ्यासी और ज्ञाता श्रावक। इसके चार भेद होते हैं—श्रोतापन्न, सकृद्गामी, अनागामी और अर्हत्।

उत्पला—एक भिक्षुणी का नाम। इसे उत्पलवर्णा भी कहते हैं। संकाश्य नगर मे जब भगवान बुद्धदेव स्वर्ग से उतरे थे तो यह उनके दर्शन के लिये वडी चिंतित थी। भगवान बुद्धदेव ने अपने तपोवल के प्रभाव से उसे चक्रवर्ती राजा वना दिया था और उसने भगवान का सब से पहले दर्शन किया था।

उपसेन—इसका नाम अश्वजित था। यह पंचवर्गियों मे एक था। बुद्धदेव ने इसे काशी मे सारनाथ के मृगदाव मे सब से पहले धर्मचक्र का उपदेश दिया था। यह वड़ा निर-पेक्ष और निरभिमान भिक्षु था। सारिपुत्र और मौद्गलायन इसे राजगृह में भिक्षा माँगते समय मिले थे और इसीके आदेश से भगवान बुद्धदेव के पास जाकर उन्होंने प्रव्रज्या ली थी।

उपालि—कपिलवस्तु का एक नापित। यह आनंद कुमार, अनिरुद्ध आदि के साथ भगवान बुद्धदेव के पास जब वे कपिल-वस्तु से चले थे प्रव्रज्या लेने गया था। बुद्धदेव ने उसे सब से पहले अपना शिष्य किया था। महात्मा बुद्धदेव के परिनिर्वाण प्राप्त होने पर यह विनयपिटक का प्रवक्ता आचार्य्य हुआ। बुद्धदेव ने राजकुमारों को उपालि को प्रणिपात करने की आज्ञा दी थी।

एलापत्र—एक नाग का नाम। पूर्व जन्म में यह एक योगी

था। एला के वृक्ष के नीचे ध्यान करता था। समाधि छूटने पर जब उठा तो उसके शिर से टक्कर खाकर वृक्ष का पत्ता टूट गया। इस पाप से वह नाग योनि को प्राप्त हुआ था। इसने बुद्धदेव से (मृगदाव मे) वाराणसी मे यह पूछा था कि मैं इस नाग योनि से कब मुक्त होऊंगा।

ककुच्छद—इस कल्प के चार बुद्धो मे दूसरे बुद्ध। इनका जन्मस्थान क्षेमावती था। किसी किसी ग्रंथ मे नाभिका भी लिखा है। इनके पिता का नाम आग्निदत्त था और ये जाति के ब्राह्मण थे। इनका परिनिर्वाण भी नाभिका के पास ही हुआ था। नाभिका नेपाल की तराई मे है।

कनकमुनि—इनका नाम कोनकमुनि भी है। ये चार मुख्य बुद्धों में से एक हैं। भद्रकल्प मे इनका जन्म सोमावती मे हुआ था। इनके पिता का नाम यज्ञदत्त था और ये जाति के ब्राह्मण थे। इनका परिनिर्वाण भी सोमावती के पास ही हुआ था। बुद्धवंश मे इनका निर्वाण-स्थान पर्वताराम मे लिखा है। पर्वताराम धौलागिरि और मुक्तिनाथ के बीच है। उसे अब सैनामैना कहते हैं।

कनिष्क—कुशनवंशी एक प्रसिद्ध राजा। यह पहली शताब्दी मे तक्षशिला और पंजाब का शासक था। यह बडा प्रतापी और विद्याप्रेमी था। एक बौद्ध भिक्षुक के उपदेश से इसने बौद्ध धर्म ग्रहण किया और धर्म-सघनी संगठित कर

त्रिपिटक का संस्कृत संस्करण कराया जो अब महायान के नाम से प्रसिद्ध है। चरकादि इसीके काल मे थे। इसने अनेक स्तूप बनवाए और संघाराम विहार आदि निर्माण कराए।

कश्यप—(१) इस कल्प के प्रधान चार बुद्धो मे से प्रथम बुद्ध। इनका परिनिर्वाण स्तूप श्रावस्ती के पास टंडवा नामक ग्राम मे है। फाहियान ने इसे उनका जन्म-स्थान भी लिखा है पर कितने लोग काशी को उनका जन्म-स्थान मानते हैं। कहते हैं कि परिनिर्वाण होने पर उनका शरीर न जला तो सब लोगों ने उनके अस्थिसंच पर स्तूप निर्माण किया। (२) इस गोत्र नाम के तीन भाई जिनका नाम बिल्वकश्यप, नदीकश्यप और गयकश्यप था। ये तीनों भाई बडे विद्वान अग्निहोत्री थे। इनके क्रमशः ५००, ३००, और २०० शिष्य अंतेवासी थे। वाराणसी से धर्मचक्र प्रवर्तन कर बुद्धदेव की शिक्षा पा तीनो भाइयों ने प्रव्रज्या ग्रहण की। ये तीनो भाई आगामी बुद्ध होंगे। (३) दे० "महा कश्यप"।

कौडिन्य—पंचवर्गी भिक्षुओं मे से एक। इसे बुद्धदेव ने वाराणसी के मृगदाव मे धर्मचक्र प्रवर्तन करते समय सब से प्रथम धर्मोपदेश दिया था।

गौतम—बुद्धदेव शाक्यसिंह का एक नाम।

चक्रवर्ती—सारे राज्यों को विजय करनेवाला राजा।

चिंचा—इसे चिंचमना भी कहते थे। मिथ्या तीर्थ-करों के

कहने से बुद्धदेव पर इसने यह कलंक लगाया था कि उन्होने उससे व्यभिचार किया था और उनसे उसे गर्भ था। वह अपने पेट पर वस्त्र लपेट कर गई थी। कहते हैं कि शक्र सफेद चूहा बन कर आया और जिन वस्त्रो को वह लपेटे थी उन्हे काट कर उसने गिरा दिया। असत्य दोष लगाने के पाप से वह पृथिवी मे धँस गई।

छदक—बुद्धदेव का सारथी। यह बुद्धदेव के महाभिनिष्क्रमण के समय कंठक को लेकर उनके साथ रात को गया था और मल्लो के राज्य के आगे अनामा नदी के किनारे से बुद्धदेव ने उसे कंठक को लेकर कपिलवस्तु वापस भेजा था।

जबूद्वीप—भारतवर्ष का नाम। बौद्धो का कथन है कि इस द्वीप का आकार जंबू के पत्ते सा है और इसके दक्षिण मे मेरु है।

जीवक—राजगृह के महाराज बिंबिसार का एक पुत्र जो अंबपाली वेश्या के गर्भ से उत्पन्न हुआ था। यह बड़ा वैद्य था और इसने तक्षशिला के विश्वविद्यालय मे शिक्षा लाभ की थी। यह बुद्धदेव का बड़ा भक्त और अजातशत्रु के दर्बार मे बड़ा प्रतिष्ठित कर्मचारी था। इसने राजगृह मे अपनी माता अंबपाली के उद्यान मे एक विहार बनवा कर बुद्धदेव को अर्पण किया था। इसने एक चिकित्सालय भी स्थापित किया था जहां वह भिक्षुओं की धर्मार्थ चिकित्सा करता था।

तथागत—बुद्ध का नाम।

तुषित—एक स्वर्ग का नाम। इसमें मैत्रेय बोधिसत्व रहते हैं।

त्रयस्त्रिंश- मेरु के चारप्रधान शृंगो के मध्य बसे हुए तेंतीस नगर। बौद्ध धर्मवालों का कथन है कि मेरु के चार शृंगों पर चातुर्महाराजक की पुरी और चारों शृंगों के बीच आठ आठ पुरी हैं और एक मध्य में है। इन नगरों के गृह और प्राचीरादि स्वर्णरचित हैं।

त्रिपिटक- बौद्ध धर्म का प्रधान धर्मग्रंथ। इसमें तीन पिटक हैं। पहले एक एक भाग के परस्पर मिल जाने के भय से उन्हें एक एक पिटारी में अलग अलग रखते थे। इसी लिये इसे त्रिपिटक कहने लगे। तीनों त्रिपिटकों के नाम हैं—सूत्रपिटक, विनयपिटक और अभिधर्म वा धर्मपिटक। सूत्रपिटक में बुद्ध-भाषित शिक्षाओं और सूक्तियों का संग्रह है। विनयपिटक में भिक्षुओं के आचार व्यवहार विधि निषेध और प्रायश्चित्त आदि का वर्णन है। अभिधर्मपिटक में चित्त चेतसिक रूप और निर्वाण का वर्णन है। इस त्रिपिटक के पारायण के लिये तीन धर्मसंघों का संगठन कनिष्क के पूर्व और एक कनिष्क के समय में हुआ था। इन धर्मसंघों में श्रमणों द्वारा पाठादि परिवर्द्धन और निष्कासन कर उसका संस्कार किया गया था। मार्गभेद से वा क्रियाभेद से त्रिपिटक के तीन यान थे—महायान, हीन-यान और मध्यम-यान। मध्यम-यान के अनुयायी अब नहीं

मिलते और न मध्यम-यान के पिटक ही के कुछ अंश देखने मे आते हैं, केवल महायान और हीनयान के त्रिपिटक और अनुयायी मिलते हैं। हीनयान के अनुयायी चटगॉव, ब्रह्मा, स्याम और लंका मे हैं, तथा महायान के अनुयायी नेपाल, तिब्बत, चीन, जापान, तुर्किस्तान और साइबेरिया मे पाए जाते हैं। हीनयान का त्रिपिटक पाली भाषा मे और महायान का त्रिपिटक संस्कृत भाषा मे है। सुयेनच्वांग की यात्रा मे महायान के विषय मे यह लिखा मिलता है—महाराज कनिष्क गांधार का अधिपति था जो बुद्धदेव के परिनिर्वाण से ४०० वर्ष बाद उत्पन्न हुआ। उसने पार्श्वित के कहने पर एक धर्मसंघ आहूत किया। वहां बौद्ध धर्म के सिद्धांत को वह नया रूप मिला जो महायान कहलाता है। इस धर्मसंघ को आहूत करने का यह कारण था कि उसमे विपर्य्यय हो जाने से संस्कार की आवश्यकता थी। ५०० विद्वान् इस धर्मसंघ मे इकट्ठे हुए थे। महाविद्वान् वसुमित्र इसमे नायक था। इस धर्मसंघ मे सूत्र-पिटक पर उपदेश-शास्त्र लिखा गया तथा विनय और अभिधर्म पिटको पर भाष्य हुए। राजा की आज्ञा से तीनो ताम्रपत्र पर खोदे गए। इससे यह स्पष्ट है कि अंतिम यान महायान है। सूत्रपिटक मे बुद्धदेव के उपदेशों का संग्रह है। उसके पॉच निकाय वा भाग हैं—(१) दीर्घ निकाय (२) मध्यम निकाय (३) संयुक्त निकाय (४) अंगुत्तर निकाय (५) क्षुद्रक निकाय। विनयपिटक मे भिक्षुसंघ के नियमों का वर्णन है। इसके तीन

भेद हैं—(१) सूत्र विभग (पाराजिका औरप्र ायश्चित्त विधान) (२) स्कंधक (महावर्ग और चुद्रवर्ग) और (३) परिवार पाठ।

अभिधर्म पिटक मे ७ भाग हैं—(१) धर्मसंग, (२) विभंग, (३) कथा और स्तूप कथन, (४) पुद्गलपन्नति, (५) धातु कथा, (६) यमक, और (७) प्रस्थान प्रकरण।

दर्शन भेद से चार भेद हैं—सौत्रांतिक, माध्यमिक, योगाचार और वैभाषिक। महायान के अनुयायी बोधिसत्वो की उपासना करते और महायान के सूत्रों का पाठ करते हैं। हीनयानानुयायी केवल बुद्धदेव की पूजा करते हैं।

त्रिरत्न—बुद्ध, धर्म और संघ।

दीपंकर—एक बुद्ध का नाम। यह बुद्धदेव के पूर्व चौबीसवे बुद्ध थे। बुद्धदेव उनके समय में बोधिसत्व थे। जब वे नगार जनपद में थे तो दीपकर बुद्ध को तीन डलियां फूलों की लेकर उन्होंने चढ़ाई थीं। दीपंकर बुद्ध ने उनके लियेय ह आशीर्वाद रूप से भविष्यद्वाणी की थी कि तुम आगे बुद्ध होगे।

देवदत्त—एक शाक्यकुमार—यह आनंदआदि के साथ बुद्धदेव के पास जा कर उनका शिष्य हुआ था। प्रव्रज्या ग्रहण कर वह भिक्षुसंघ पर अपना आतंक जमाना चाहता था और उसने बुद्धदेव से संघ के भिक्षुओं के लिये अनेक कठिन नियम निर्धारण करने के लिये अनुरोध किया, पर बुद्धदेव ने उस पर न तो स्वीकृति दी और न उसे संघ का अधिनायक वा

उपनायक ही माना । निदान वह कुछ भिक्षुओं को लेकर अपनी एक पृथक् जत्था बाँध बुद्धदेव के समय ही मे अलग हो गया । उन लोगों के नियम बौद्ध भिक्षुओं से कुछ अधिक कठोर थे । देवदत्त ने अजातशत्रु को अपने पजे मे कर लिया था और यह भी संभव जान पड़ता है कि उसने ही अजातशत्रु को उभाड़ कर उससे उसके पिता बिंबिसार को बदीगृह मे बद करा दिया हो । देवदत्त को भय था कि बिंबिसार बुद्धदेव का भक्त था और बिना उसके अधिकारच्युत किए उसे बुद्धदेव को कष्ट पहुँचाने का अवसर प्राप्त न होगा । अजातशत्रु को उभाड़ कर उसने अनेक बार बुद्धदेव के प्राण लेने की चेष्टा की थी । उसने नालागिरि हाथी को उनके मारने के लिये छुड़वाया और धनुर्धरों को उनको तीर से मारने के लिये भेजवाया पर बुद्धदेव का बाल बाँका न हुआ । गृध्रकूट पर विचरते समय एक बार उसने उन पर पत्थर भी फेंका था जिससे उनके पैर का अँगूठा कुचल गया था । वह शतपर्णी गुफा के पास रहता था और अंत समय मे श्रावस्ती मे बुद्धदेव के पास गया था । पाली ग्रंथो का मत है कि वह क्षमा प्रार्थना करने जाता था और श्रावस्ती मे एक तालाब मे नहाने के लिये उतरा और वहीं धरती मे समा गया, पर फाहियान ने लिखा है कि वह अपने नख मे विष पोत बुद्धदेव के प्राण लेने के लिये गया था और धरती मे समा गया । उसके अनुयायी फाहियान के काल तक थे । वे अन्य सभी बुद्धो को मानते थे पर शाक्यसिंह को नहीं मानते थे ।

धर्मविवर्द्धन—अशोक के एक पुत्र का नाम जो फाहियान के कथनानुसार गाधार का शासक था।

धातु—बुद्धदेव, बुद्ध वा किसी अर्हत् के शरीर का भस्म वा अस्थि।

नद—बुद्धदेव का सौतेला भाई। इसे बुद्धदेव ने कपिलवस्तु मे आकर अपना शिष्य किया था। जब यह छोटा था तो बुद्धदेव के साथ खेलता था। लिछिवी के राजा ने शाक्यो की राजधानी मे एक सुदर हाथी उपहारस्वरूप भेजा था। देवदत्त ने उसे घूंसा मार के मार डाला। हाथी राह मे पड़ा था। नद ने उसे खीच कर सड़क से अलग कर दिया था। गौतमबुद्ध ने हाथी की पूंछ पकड़ कर सात परिखा पार नगर के बाहर उसे फेक दिया था। कहते हैं कि उस समय नंद और गौतमबुद्ध की अवस्था दस वर्ष की थी।

निकाय—बौद्ध धर्म के अंतर्गत कर्मकांड के विचार से शाखा वा संप्रदाय भेद। सामान्यतया चार निकाय हैं पर अवांतर निकायों के विचार से अट्ठारह निकाय हैं—

१—आर्य संघिक निकाय	७	निकाय
२—आर्य स्थविर निकाय	३	,,
३—आर्य सम्मति निकाय	४	,,
४—सर्वास्तिवाद निकाय	४	,,
	१८	निकाय।

निर्ग्रंथ—इसे नातपुत्र भी कहते हैं। यह एक कृषक का पुत्र था। जैनी लोग पार्श्वनाथ के अनुयायों को नातपुत्र कहते हैं। यह प्रधान तीर्थियों मे था। फाहियान का कथन है कि इसने बुद्धदेव को विषाक्त भात खिलाने के लिये आमन्त्रित किया था।

पचशिखा—एक देव गंधर्व का नाम। इसे शक्र अपने साथ ले कर बुद्धदेव के पास ४२ प्रश्न पूछने राजगृह मे आया था और उसने बयालीस प्रश्न पृथ्वी पर एक एक रेखा खींच कर किए थे।

पिसुन—मार का एक नाम। दे० "मार"।

प्रत्येक बुद्ध—वह बुद्ध जो स्वय बोधिज्ञान प्राप्त कर परिनिर्वाण प्राप्त हो और अन्यो को मार्ग का उपदेश न करे।

प्रसेनजित्—कौशल के श्रावस्ती नगर के एक राजा का नाम। यह बुद्धदेव का समकालीन था। इसकी बुद्धदेव पर बड़ी श्रद्धा और भक्ति थी। बुद्धदेव ने इसके अनुरोध से श्रावस्ती मे अधिक काल तक धर्मोपदेश किया था।

बिबिसार—मगध के एक राजा का नाम। यह बुद्ध का समकालीन था। इसकी राजधानी राजगृह वा गिरिव्रज थी। बुद्धदेव को इससे बड़ा प्रेम था। इसीके कारण बुद्धदेव राजगृह मे प्रायः जाते और रहते थे। अजातशत्रु इसका पुत्र था। वह वृद्धावस्था मे उत्पन्न हुआ था। राजा बिबिसार ने एक और नगर राजगृह नामक गिरिव्रज से अलग बसाया था। जब अजातशत्रु बड़ा हुआ तो वह अपने पिता को बदी कर के स्वय

राज्य पर बैठा। राजा बिंबिसार बंदीगृह मे पड़ा पड़ा बड़ी यातनाएँ भोग कर गिरिव्रज मे मरा। फाहियान ने गिरिव्रज को प्राचीन राजगृह लिखा है और बिंबिसार को उसका बसानेवाला लिखा है पर यह भ्रमपूर्ण जान पड़ता है। गिरिव्रज महाराज जरासंध के समय में जो बिंबिसार के बहुत पहले महाभारत के समय मे हुआ था मगध की राजधानी रहा है। बिंबिसार इसी जरासंध का वंशधर और उससे अनेक पीढ़ी पीछे हुआ था। हां बिंबिसार ने नवीन राजगृह अवश्य बसाना प्रारंभ किया था पर उसके समय मे गिरिव्रज ही मगध की राजधानी रहा। अजातशत्रु ने पिता को बंदी कर नवीन राजगृह मे आकर अपनी राजधानी बनाई थी।

बुद्ध—बोधिज्ञान प्राप्त करनेवाला बोधिसत्व। बुद्ध दो प्रकार के होते हैं—(१) बुद्ध और (२) प्रत्येक बुद्ध। बुद्ध वह है जो बोधिज्ञान प्राप्त कर समस्त संसार को धर्म का उपदेश करे। २४ बुद्ध हो चुके हैं। वर्तमान समय मे भद्रकल्प नामक कल्प है। इस कल्प के पहले बुद्ध कश्यप, दूसरे ककुच्छंद, तीसरे कनकमुनि और चौथे शाक्यमुनि वा गौतमबुद्ध हैं। आगामी बुद्ध मैत्रेय होगे।

बुद्धदेव—गौतमबुद्ध वा शाक्यमुनि का नाम।

बोधिसत्व—वह सकृद्‌गामी जीव जो बुद्धत्व लाभ करे। बोधिसत्व ही उन्नति करते करते बुद्ध हो जाते हैं।

महाकश्यप—बुद्धदेव के एक प्रधान शिष्य का नाम। यह राजगृह के पास महातीर्थ नामक गॉव का रहनेवाला था। इसके

पिता का नाम कपिल था। इसका पूर्व नाम पिप्पल था। यह परम विद्वान् था। इसे भगवान बुद्धदेव ने अपने तीसरे चातुर्मास्य मे राजगृह मे प्रव्रज्या ग्रहण कराई थी। शतपर्णी गुफा मे बुद्धदेव के परिनिर्वाण पर ५०० भिक्षुओ के साथ अधिनायक का आसन ग्रहण कर इसने सूत्र, विनय और अभिधर्म नामक त्रिपिटक का प्रवचन किया था। उस समय सब ने इसे महा-स्थविर की उपाधि दी थी।

महाप्रजावती—बुद्धदेव की विमाता। इसे प्रजावती और प्रजापती भी कहते हैं। यह महामाया की बहिन थी। इसीने बुद्धदेव का पालन पोषण किया था। महाराज शुद्धोदन के देहात हो जाने पर यह प्रव्रज्या ग्रहण करने के लिये बुद्धदेव के पास गई। बुद्धदेव ने स्त्रियों को प्रव्रज्या देने से इनकार किया पर जब आनंद ने अनुरोध किया तो उन्होने उसे प्रव्रज्या ग्रहण कराई थी। इसके एक ही पुत्र नंद नामक था जिसे भगवान बुद्धदेव कपिलवस्तु मे जाकर शुद्धोदन के जीवन काल ही मे प्रव्रज्या देकर साथ ले आए थे।

महामौद्गलायन—यह राजगृह के पास कोलित ग्राम का रहनेवाला सुजात नामक ब्राह्मण का पुत्र था। यह सारिपुत्र के साथ राजगृह मे भगवान बुद्धदेव का शिष्य हुआ था। पहले यह संजय परिव्राजक का अंतेवासी था। यह शतपर्णी के प्रथम धर्मसंघ मे महाकश्यप के त्रिपिटक के संग्रह मे सम्मिलित था। जब भगवान त्रयस्त्रिंश स्वर्ग मे अपनी माता को अभिधर्म

का उपदेश देने गए थे तो अनिरुद्ध ने इसीको उनके पास यह पूछने के लिये भेजा था कि आप कब और कहां उतरेंगे।

महिशासक—सर्वास्तिवाद निकाय के चार निकायों में से एक निकाय।

मुचलिद—एक नाग का नाम। यह गया के पास एक ह्रद में रहता था। ह्रद के पास ही मुचलिद का एक पेड़ भी था। बुद्धदेव बोधिज्ञान प्राप्त कर जब उस ह्रद के पास गए तो सात दिन तक मूसलधार वर्षा हुई थी। उस समय इस नाग ने बुद्धदेव को अपने फन से सात दिन तक वर्षा से बचा रखा था।

मैत्रेय—यह एक बोधिसत्व हैं जो आगे बुद्ध होंगे। यह इस समय तुषित स्वर्ग में हैं।

मौद्गलायन—दे० "महामौद्गलायन"।

योजन—यों तो पुराणों के अनुसार चार कोस वा ८ मील का योजन होता है पर फाहियान का योजन ६½ मील का और सुयेनच्वांग का योजन ४½ मील से कुछ अधिक का पड़ता है।

राहुल—गौतमबुद्ध के पुत्र का नाम। इसे बुद्धदेव ने कपिलवस्तु पहुँच कर सारिपुत्र से प्रव्रज्या दिलवाई थी। यह वैभाषिक नामक दर्शन का आचार्य था। यह सामनेरों का अग्रगण्य और पूज्य माना जाता है।

ली—चीन देश का मान। यह ⅙ मील का होता है।

वज्रपाणि—मल्लराज—कुश नगर के राजा का नाम।

विनय—(१) आचार। सदाचार। (२) त्रिपिटक के तीन पिटकों मे दूसरा पिटक जिसमे भिक्षुओ के आचार व्यवहार विधि निषेध का वर्णन है। दे० "त्रिपिटक"।

विमोक्ष स्तूप—वह स्तूप जिसमे द्वार हो और उसमे यथासमय धातु रखा वा उससे बाहर निकाला जा सके।

विरूढक वा विरुद्धक—श्रावस्ती के राजा प्रसेनजित् का पुत्र था। यह शाक्यों की एक दासी से उत्पन्न हुआ था। इस ने शाक्यों पर आक्रमण किया था, पर बुद्धदेव उसे मार्ग में मिल गए थे और उन्होंने उसे लौटा दिया था। पीछे कुछ दिन बीतने पर फिर उसने कपिलवस्तु पर आक्रमण किया और कपिलवस्तु के शाक्यों का नाश कर डाला। कितने लोग कहते हैं कि ५०० शाक्य स्त्रियां थी जिन्हे विरूढ़क अपने अंतःपुर मे ले जाना चाहता था पर उन लोगों ने निषेध किया। इस पर विरूढ़क ने उन्हें मार डाला। सब की सब श्रोतापन्न हो गई थी।

विशाखा—इसे माता विशाखा भी कहते हैं। यह प्रसेन-जित् के कोषाध्यक्ष पुण्यवर्द्धन की स्त्री थी। इसने बुद्धदेव के लिये एक विहार बनवाया था जिसका नाम पूर्वाराम था। यह बड़ी दानशीला थी।

विहार—भिक्षु संघ के रहने का स्थान। बौद्ध भिक्षुओ का मठ।

शक्र—इंद्र वा देवराज। यह त्रयस्त्रिश का राजा है। दे० "त्रयस्त्रिश"। यह चातुर्महाराज के अंतर्गत भी है।

शाक्यमुनि—गौतमबुद्ध।

श्रमण—बौद्ध भिक्षु जिसने प्रव्रज्या ग्रहण की हो।

श्रोतापन्न—वह उपासक, श्रावक वा भिक्षु जो निर्वाण की ओर अभिमुखीभूत है। चार प्रकार के श्रावकों में प्रथम श्रेणी का श्रावक।

संघाली वा संघाती—श्रमणों के तेरह व्यवहार्य्य द्रव्यों में पहला। वे तेरह द्रव्य ये हैं—(१) संघाती (२) उत्तरा संग (३) अंतर्वास (४) निशादन (५) निवासन (६) प्रति निवासन (७) संध्यशिक्षा (८) पतिसंध्यशिक्षा (९) काय-प्रक्षालन (१०) मुखप्रक्षालन (११) केशप्रतिग्रह (१२) कडु प्रतिखंडन (१३) भेषज्य-परीक्षा-चीर। संघाती वह वस्त्र है जिसे भिक्षु लोग ऊपर से ओढ़ते हैं। पहले तीन द्रव्य त्रिचीवर कहलाते हैं।

सकृद्गामी—वह श्रावक जो शीघ्र अनागामी वा अर्हत होने-वाला हो। यह श्रावकों में दूसरी श्रेणी है।

सप्तरत्न—सोना, चांदी, मरकत, हीरा, मणि, पद्मराग और स्फटिक।

सर्वास्तिवाद—बौद्ध धर्म के चार प्रधान निकायों में से एक निकाय। इसके चार अवांतर निकाय थे—थेरवाद, वज्जि-पुत्तक, महिशासक और धर्मगुप्तिक।

साबी—अर्बी साबान। इसे अंग्रेजी मे Sabin कहते हैं। अरबदेशवासी।

सामनेर—बौद्ध ब्रह्मचारी जिसने प्रव्रज्या ग्रहण न की हो।

सूत्र—त्रिपिटक मे पहला पिटक। इसमे सूत्रो का संग्रह है। दे० "त्रिपिटक"।

सारिपुत्र—बुद्धदेव के एक शिष्य का नाम। यह उपतिष्य ग्राम निवासी वकत नामक ब्राह्मण का पुत्र था। बुद्धदेव का यह परम प्रिय शिष्य था। उनके जीवन काल ही मे यह परिनिर्वाण प्राप्त हुआ था।

सुदत्त—इसे अनाथपिडक भी कहते थे। यह श्रावस्ती का एक धनाढ्य सेठ था। इसने श्रावस्ती मे जेतवन विहार बनवाया था। जेतवन को उसने सारी पृथ्वी पर मोहर बिछा कर लिया था। भगवान बुद्धदेव उस विहार मे रहते थे। यह बड़ा दानशील था।

सुदान—गौतमबुद्ध किसी जन्म मे सुदान वा सुदत्त नामक वैश्य हुए थे।

सुभद्र—एक त्रिदंडी यती का नाम। यह बुद्धदेव के निर्वाण काल मे कुश नगर मे गया और उनका अंतिम शिष्य हुआ था। यह अर्हत हो गया था। इसकी अवस्था १२० वर्ष की थी।

सुरगमसूत्र—इसे सुरंगम समाधि सूत्र भी कहते हैं। यह महायान के सूत्रपिटक मे सूत्र के अंतर्गत है।

स्तूप—एक घंटाकार वास्तु। यह दो प्रकार का होता है, एक वह जिसमें अवकाश होता है और भीतर जाने का मार्ग होता है। इसे विमोच्च स्तूप कहते हैं। दूसरा वह जिसमे भीतर जाने का मार्ग नहीं होता। दोनों के भीतर धातुगर्भ होता है। द्वितीय प्रकार का स्तूप बुद्धदेव वा अर्हंतों के परिनिर्वाण स्थान वा चरित्र संबंधी घटनास्थलों पर बनता है। परिनिर्वाण स्थान के स्तूप में प्रायः धातु होता है और शेष स्थानों में धातु नहीं होता। धातु भीतर गर्भ मे रख कर ऊपर से स्तूप बनता है। इन्हें चैत्य भी कहते हैं।